अनुभव-प्रदीपिका

लेखक तथा प्रकाशक

पं० रामचन्द्र शर्मा मुनीम

बिड़ला ब्रदर्स, जयपुर

मुद्रक

नथमल लूणिया

आदर्श प्रेस, कैसरगंज अजमेर।

संचालक-जीतमल लूणिया

१०००

सन् १९३९

मूल्य ।=)

आत्म निवेदन

सर्व प्रथम उस जगन्नियन्ता परम पिता जगदीश्वर की सेवा में कोटिशः प्रणाम और अनेकानेक धन्यवाद है, जिसने इस कर्मभूमि संसार और सृष्टि की इस भारतव में अपनी मुख्य राजधानी स्थापित कर पुनीत किया। और समय समय पर उस विश्वेश्वर ने मनुष्यादि शरीर धारण कर, धर्म और भगवत् जनों की रक्षा द्वारा अपने चरणारविन्दों से इसको सुशोभित कर, प्राणी मात्र के कल्याणार्थ अभेद रूप से वेदादि उपनिषद् भगवत्त गीता आदि का सदुपदेशामृत स्वयं मुखारविन्द से सर्व जनों के करणपुटों द्वारा पान कराकर कृतकृत्य किया।

ऐसे परम पुनीत भारतवर्ष में मनुष्य देह पुरुष रूप में और द्विजादि उच्चजाति में जन्म होना, तो पूर्वपुण्य के उदय और ईश्वर के परमानुग्रह से ही प्राप्त होता है। इतना होने पर भी मनुष्य अपने आत्मोद्धार का प्रयत्न न कर स्त्री पुत्र धनादि संसारी पदार्थ जो दुःख मूल और क्षणभंगुर हैं उनही के प्राप्त करने में कटिबद्ध होकर आजन्म उद्योग करता रहता है। इसका कारण यही हो सकता है, कि ऐसे मनुष्यों को न तो कभी सत्संग करने का यथोचित समय मिल सका है और न कभी किसी विद्वान महानुभाव द्वारा सदुपदेश प्राप्त होने ही का सुअवसर प्राप्त हुआ है। यदि शास्त्रों के श्रवण एवं उन पर विचार करने का समय उन लोगों को मिल जाता तो उनके चित्त से भ्रान्ति रूप मल दूर होकर 'मुमुक्षता' रूपी रंग अवश्य लगने से 'दोष दृष्टि जिहासा च पुनर्भोगैश्वदीनताइन' वाक्यों के मनन करने का साहस उनके चित्त में उत्पन्न हो जाता।

क्योंकि जब तक मनुष्यों के चित्तमें जन्म जन्मान्तरों की भावना वश संसारी भौतिक पदार्थों को ही सुखजनक मानते रहने से ऐसी दृढ़भावना हो जाती है कि सुख के यथार्थ साधन जानने में उनकी अच्छी तरह रुचि नहीं होती। वे यह भी नहीं जानते कि अपने सुख दुःखों का निर्माता स्वयं आप है इस लिये जब तक मनुष्यों को संसारी पदार्थों के दोष और उनका दुखदायी होना यथार्थ रीति से ज्ञात नहीं हो जाता तब तक उनकी त्याग दृष्टि होना असंभव प्रतीत होता है।

इसलिये जो पढ़ने के थोड़े से भी अभ्यासी हैं उनके लिये बहुत सरल भाषा में छोटी छोटी पुस्तकों की आवश्यकता है। और बहुत सी छोटी बड़ी पुस्तक लिखी भी गई हैं। इसी विचार से मैंने भी अपने चित्त के उद्गार बहुत सरल भाषा में अबोध जनों के मनोगत भावों जिससे स्त्री पुत्रादि भौतिक पदार्थों को सुख-दायी और सुखके साधन इनही को जानने का जो मिथ्या भ्रम पूर्ण रूप से दृढ हो रहा है, उसका निराकरण और वास्तविक सुख प्राप्त होने के उद्योगों का अनेक प्रकार से दिग्दर्शन कराया है जिनके विचार से इस संसार की असारता प्रतीत होने पर उपराम द्वारा परम पद प्राप्त होने से यह मनुष्य जन्म सफल होकर कृत कृत्य हो जायगा। मैं कवि नहीं हूँ न कविता जानता हूँ और संगीत विद्या का भी यत्किंचित् ज्ञाता नहीं हूँ परन्तु समय समय पर जो भाव चित्त में उत्पन्न हुए और जो गीत मैंने कहीं सुने और उनकी लय रुचिर प्रतीत हुई। उन भावों का उन लयों में समावेश करके चित्त विनोदार्थ लिख लिया। पश्चात् मित्र वर्ग के अनुरोध करने पर उनको एकत्रित कर पुस्तकाकार

में लिख अनुभव-प्रदीपिका नाम देकर महानुभाव सुहृज्जनों की सेवा में सादर समर्पित किया है। मुझे पूर्ण आशा है कि सज्जन वृन्द अपनी योग्यता पर दृष्टि देकर इस तुच्छ सेवा को ग्रहण करेंगे और जो त्रुटियाँ होवें उन पर क्षमा प्रदान करेंगे। हरि ओ३म् तत्सत् ॥

रचयिता—

अलवर राज्यान्तर्गत रैणी ग्राम निवासी गौड़ ब्राह्मण वंशोद्भव ज्योतिर्विद्‌गण पादपूजित स्वर्गीय श्रीमान् १०८ श्री पण्डित रामनारायणजी तदात्मज 'रामचन्द्रशर्मा' हाल निवासी सवाई जयपुर भट्टों की गली चौकड़ी।

रामचन्द्रशर्मा मुनीम बिडला आदर्स जयपुर

पुस्तक मिलने का पता—

पं० रामचन्द्र शर्मा,
भट्टों की गली चौकड़ी,
जयपुर

पं० पावनीप्रसादशर्मा वैद्यराज
सार्वजनिक औषधालय
कैसरगंज, अजमेर

अनुभव-प्रदीपिका
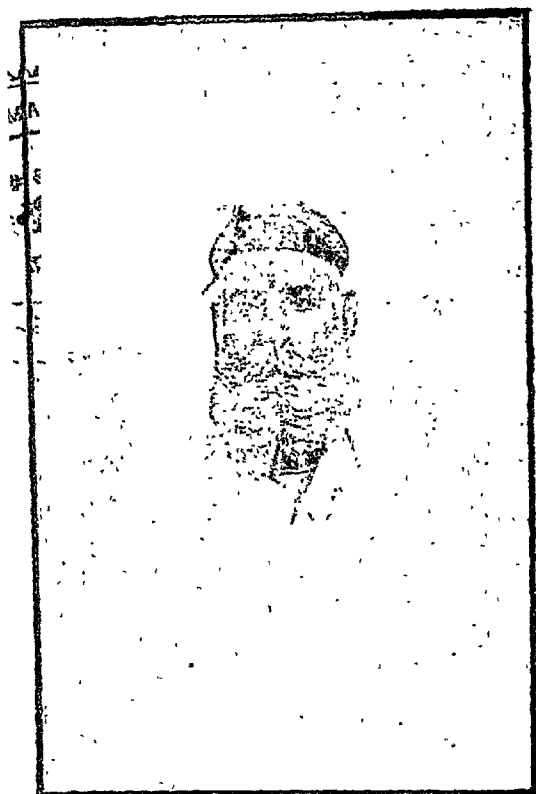
श्री० पं० रामचन्द्रजी शर्म्मा

प्रधान

श्री० राजस्थानीय गौड़ ब्राह्मण सभा ।

॥ श्रीः ॥

अनुभव प्रदीपिका

पराई वस्तु में मिथ्या ममता ।

विस्मय होय निरखि जगलीला तन रक्षा हित यत्न उपावैं ।
द्रव्य देय खावति कटु औषधि जन जन के पद शीस नवावैं ॥
रहै सदा यह देह हमारो तेहिं हित कष्ट अपार उठावैं ।
रामचन्द्र ते भ्रान्त मूढ़ जन अन्धरूप ह्वै बहु दुख पावैं ॥ १ ॥

दोहा

तुमरी विना सहायता, देह बतावै जोय ।
ताहि पूर्ण अधिकार है, रखै बिगारै सोय ॥ २ ॥
जेते दिन जैसैं चहै, तैसैं राखै ताहि ।
रच्यो ताहि जिहिं कार्य हित, तातैं सकल कराहि ॥ ३ ॥
सामग्रीहू देह की, तैं कछु दीनी नाहिं ।
यत्न उपाय न तै कियो, देह बनन के माहिं ॥ ४ ॥
दियो दिवायो कछु नहीं, कियो करायो नाहिं ।
केहि हिसावतैं देह यह, फिर तुमरो है जाहि ॥ ५ ॥
देहादिक तेरे नहीं, देह रूप तू नाहिं ।
वृथा परिश्रम क्यों करै, हास वृद्धि इहिं माहिं ॥ ६ ॥

तू जानै कित जाय है, देह कहीं रहजात ।
केहिं विधि तुमरो देह यह, तनक विचारहु तात ॥ ७ ॥
अमित देह धारण किये, ते सब गये बिलाय ।
तिनमैं तुमरी एक नहि, यह कैसै ह्वै जाय ॥ ८ ॥
हैं ललाट में नेत्र दो, तौहु अन्ध क्यों होय ।
हृदय पटल खोले विना, लखै यथार्थ न कोय ॥ ९ ॥
जब देखत देखै नहीं, ताको कवन उपाय ।
कथन मात्रही ह्वै सकै, घोरि न पायो जाय ॥१०॥
एक तनकसी भूल मैं, उलट पलट सब होय ।
समझमात्र याको यतन, अन्य उपाय न कोय ॥११॥
जो केवल यक समझतैं, ग्रंथि त्वरित खुल जाय ।
शस्त्र कटारी छुरिन तैं, मूरख करहिं उपाय ॥१२॥
चली जाहु चाहै अभी, भलै रहौ सौ वर्ष ।
हानि लाभ तुमरो कहा, वृथा शोच क्यों हर्ष ॥१३॥
भौतिक मिथ्या देह यह, तुमरो कबहुन होय ।
प्रीति करै पर वस्तुतैं, दंड योग्य है सोय ॥१४॥
तनक न कीन विवेक तुम, कबहून कीन विचार ।
वृथा फँसे भ्रमजाल में, अपनो कीन विगार ॥१५॥
जैसी तुमरी बुद्धि है, तैसो ही व्यवहार ।
नीच स्वान सम भटकते, निशि दिन जन जन द्वार ॥१६॥
रामचन्द्र जग विदित सो, सत्य कीन तुम ताहि ।
बेटी जाय पड़ोस की, जानु देहु मैं नाहि ॥१७॥
हमरो तामैं कछु नहीं, काम न हमरे आहि ।
मारे और मरे विना, तौहु जानेदूँ नाहिं ॥१८॥

चिन्तामणि हूतैं अधिक, निज स्वरूप तजि तात ।
भ्रम वश धोके लाल के, पीक बिन्दु ली हाथ ॥१९॥
यत्न कियेहू ना रहै, त्वरित शुष्क ह्वै सोय ।
तजि अवसर पछताय है, फिर रोये का होय ॥२०॥
केहि कारण या देह मैं, प्रीति करत है तात ।
उत्तमता यामैं कहा, लखी कहो सो बात ॥२१
अस्थि मांस अरु कफ रुधिर, ऊपर चर्म दिखात ।
पुरीषादि भंडार यह, कहा रुचिर दरसात ॥२२॥
जातैं सबकूं ग्लानि है, घृणा देखते आय ।
जातैं तुमरी प्रीति क्यों, तनक विचारहु तात ॥२३॥
नहिं तुमरो सम्बन्ध कछु ज्यौं रथ रथी पिछानि ।
रथ टूटे नहिं होय ज्यौं, रथी पुरुष की हानि ॥२४॥
तुमरी याकी एकता, कबहुन ह्वै सुनि बीर ।
देख तुमारी अज्ञता, होय सुजन चित पीर ॥२५॥
तैं कबहूँ जानी नहीं, मुख्य एक यह बात ।
तू अविनाशी वस्तु, यह नाशमान विख्यात ॥२६॥
देहादिक भौतिक जगत, माया के परिणाम ।
सो तो तैं नित दूर, तू सद्घन आतमाराम ॥२७॥
तू चेतन जड़ रूप यह, मायिक यह तू नित्य ।
दृष्ट नष्ट मृगवारि यह, तू अखंड नितसत्य ॥२८॥
नित्य मुक्त सुखधाम तू, भौतिक दुखमय येह ।
प्रत्यक तूहि पराक् यह, सकल दुःखको गेह ॥ २९॥
तू नेत्रन को नेत्र है, और घ्राण को घ्राण ।
साक्षी अन्तःकरण को, नित्य प्राण को प्राण ॥३०॥

तेरी सत्ता पायके, होय जगत व्यवहार ।
सूर्यादिक भू सिन्धु नभ, तू सबको आधार ॥३१॥
तू नभ सम निर्लेप अरु, गिरि सम निश्चल रूप ।
भासत रवि सम सिन्धु सम, लख्यो अपार अनूप ॥३२॥
प्रीति करहु तुम आप में, जो तुमरो निज रूप ।
ज्यों सब दुःखको अन्त अरु, है आनन्द अनूप ॥३३॥
मिलै न बिछुरै जो कबहुँ, सो है अपनो आप ।
जन्मादिक जामैं नहीं, रहित सकल दुख ताप ॥३४॥
नित्यानन्द स्वरूप तू, चिद्घन अज निष्काम ।
रामचन्द्र व्यापक जगत, रहित रूप गुणनाम ॥३५॥
अज्ञ नृपति ढिग आय ज्यौं, दासी ले विरमाय ।
दासरूप सो नृपति हू, दीन मलिन है जाय ॥३६॥
नाममात्र ही नृपति वह, सुख हित भटकत सोय ।
राज्य कोष सब नष्ट है, चलै न आज्ञा कोय ॥३७॥
सोही तुमरे संग भई, चित्त देय सुनि बात ।
त्यौंहि अविद्या जीवकूं, मोहित कीनो तात ॥३८॥
राज महिषि विद्या मिलै, होय अविद्या नाश ।
रामचन्द्र आनन्द घन, तब है स्वयं प्रकाश ॥३९॥

पुत्र के आन्तरिक गुण।

पूरण दुःख मूलसुत जगमें ताहि अज्ञजन चाहत हैं।
जन्म हुये तैं प्रथम पुत्र को नामहि दुःख लगावत हैं॥
पुत्र नहीं यह निशिदिन चिन्ता एकहि दुःख सतावत हैं।
औषधादि कटु सेवन करि अरु भैरव भूत मनावत हैं॥
पुत्र जन्म विन धिक्धिक् जीवन जन जनतैं बहु भांति कहैं।
विना विचारे करैं अज्ञ जन ते नहिं सुखको गंध लहैं॥
भवबन्धन तैं मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहैं॥ १॥
होय यदृच्छा गर्भ मातु पितु मनमें यौं घबरावत हैं।
सुता होय वा पुत्र जानिये टीवेटीव दिखावत हैं॥
पुत्रजन्म यदि होय हर्षकर घरको द्रव्य लुटावत हैं।
बहन भानजी याचकगण आ बहुविधि नाच नचावत हैं॥
द्रव्य खोय मन में पछतावत सबतैं दुःखमय वचन कहैं।
भवबन्धनतैं मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहैं॥ २॥
बालपने के रोग पुत्र के देखि मात-पितु रोवत हैं।
जन जन आगे शीस पीटकरि अपनो जन्म विगोवत हैं॥
अपनो सुख आराम त्यागि ते नहीं अहर्निशि सोवत हैं।
स्याणे भोपे नीच चूहरे तिनतैं जीवन जोवत हैं॥
तजि विश्वास ईश प्रारब्धहिं ते मनवांछित सिद्धि चहैं।
भवबन्धन तैं मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहैं॥ ३॥
पढ़ै नहीं तो यह दुख भारी कहा कमाकर खावैगो।
सेवक बनिकै जन जन आगे अपनो शीस नवावैगो॥

सब समृद्धि हमरी यह खोवै सकल जन्म दुख पावैगो ।
चोरी जुवा करै मूढ़ यह हमरो नाम लजावैगो ॥
शोकातुर यों होय मातपितु विविध भाँति समझावत हैं ।
भवबन्धन तैं मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहैं ॥ ४ ॥
कोउ न होय सहायक तेरो जब निर्द्धन व्है जावगो ।
जाति पाँति में सब जन आगे नीचो हमहिं दिखावैगो ॥
बहु दुःख पाय कियो तुम पालन यह सुख हमहिं दिखावैगो ।
हम यह जानी वड़े हुये पर. कमा कमा कर लावैगो ॥
सेवा करै कह्यो सब मानै अब निराश व्है चित्त दहै ।
भवबन्धन तै मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहै ॥ ५ ॥
तुमरे हेतु जन्म सब खोयो नहिं अपनों निस्तार कियो ।
रामनाम हू कबहू न लीनो तुमरे चित्त न चित्त दियो ॥
कर्मकाण्ड श्राद्धादि करहू तुम यौं निस्तारो मानलियो ।
वृद्ध भये अब कछु न व्है सकै कंपित निशिदिन होत हियो ॥
पाप किये बहु पूर्व जन्म हम तिनही को फल भोग यहै ।
भवबन्धनतैं मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहै ॥ ६ ॥
का उपकार नयो तुम कीनो सबही जन करते आये ।
पालन हमरो व्यर्थ की न तुम गीत रात दिन जिहि गाये ॥
मैं तुमतै कबहू न कही यह क्यों हमरे हित दुःख पाये ।
जगत रीति है सो तुम कीनी अब क्यों मन में पछताये ॥
रामनन्द्र :अस वचन सुनत कटु परजन हू को चित्त दहे ।
भवबन्धन तैं मुक्त न होवहि विविधि क्लेश दुःखादि सहै ॥ ७ ॥
जिनके औरस पुत्र न होवहिं ते धनदे सुत लावत हैं ।
दृढ़ बन्धन हित मोल शृङ्खला लेकर पाव बँधावत हैं ॥

जब सुत के सुख भोगन लागहिं तब रोरो पछतावत हैं ।
जन जन आगे शीस पीट कर अपनी कुमति सुनावत हैं ॥
ज्यों जन क्षुधित तृप्ति हित विषभखि सुखही को आगमन चहैं ।
भवबन्धनतें मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहैं ॥ ८ ॥
अपनो और परायो धन ले करि विवाह दुःख पावत हैं ।
दम्पति दोनूं मातपिता हित गारी दे बतरावत हैं ॥
चौर जार ह्वै बैठि कुसंगति खोटे कर्म उपावत हैं ।
ताहि नेत्र लखि मरण आपनो मातपिता भल गावत हैं ॥
घोर पापको फल दारुण तेहिं अपने मुखतें आप कहैं ।
भवबन्धनतें मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहै ॥ ९ ॥
बन्ध्यो मोह ममता दृढ़ बन्धन तौहु न ताहि विछोवत हैं ।
चोर नारि ज्यौं प्रगट न रोवत त्यौं भीतर ही रोवत हैं ॥
कहँलौं कहूँ बहुत होजावत कहे कहा अब होवत हैं ।
सब जन जानें तदपि दुःखकूं सुखमय जानि सजोवत हैं ॥
होय नारिके पीर प्रसव ज्यौं ताहीकूं सुखरूप कहैं ।
भवबन्धनतें मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुखादि सहैं ॥१०॥
सेवा करै शीसधरि आज्ञा जब लौं पिता कमावत है ।
वृद्ध निकर्मो होय पिता तब खोटे वचन सुनावत है ॥
जो कछु शिक्षा करै पुत्रहित ताहि नीक नहिं भावत है ।
पड्यो रहैरे वृद्ध डोकरे हमहिं कहा समुझावत है ॥
रूखी सूखी खाय पेटभरि न तु अपनो तू पन्थ गहै ।
भवबन्धनतें मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहै ॥११॥
यातें अधिक और बहुतेरी घर घर मांही देख परी ।
चित हमरेमें रुकी नहीं तब विवश होय अब कथन करी ॥

रामचन्द्र चित यही कामना कहीं न अस सुख होय घरी ।
नेत्र निहारैं तदपि चहै सुत तिनको मति प्रारब्ध हरी ।
तन मन धन परमार्थ अर्पकरि दुःखमूल कर यत्न गहैं ॥
भवबन्धतैं मुक्त न होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहै ॥१२॥

धन की महिमा ।

दुख कारण केवल धन जगमैं यही नरक पहुँचावत है ।
पिता पुत्र मैं रारि करावत धन ही शीस कटावत है ॥
देश विदेश फिरावत धन ही खोटे कर्म करावत है ।
सब अनर्थ को मूल वित्तहित चोरी कर हरपावत है ॥
जिनके धनकी लगी लालसा ते न कबहु विश्राम लहैं ।
भवबन्धनतैं मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहैं ॥ १ ॥
धन के लोभी फिरैं माँगते धन ही मान घटावत है ।
धन कारण ही झूठ पापकर अपनो कंठ बंधावत है ॥
हिन्सा अरु पाखंड पिशुनता नाना स्वांग भरावत है ।
धर्म कर्म पै धूरि डरावत दोउ लोक बिगरावत है ॥
रामचन्द्र धिक् धन अति गर्हित सुजन न ताहूं नीक कहैं ।
भवबन्धनतैं मुक्त न होवहि विविधि क्लेश दुखादि सहै ॥ २ ॥
केते धन को उचित कमावन यह प्रमाण नहिं पावत है ।
किती आयुलौं धन संग्रह भल अवधि न ठीक जनावति है ॥
बालक वृद्ध तरुण आतुर हू धन ही धन कूं चाहत हैं ।
जिनके घर में धन असंख्य है सोहु कमावत धावत है ॥

रामचन्द्र जिन पुण्य उदय व्है ते सुकृती जन धन न चहैं ।
भवबन्धनतैं मुक्त न होवहिं। विविधि क्लेश दुःखादि सहैं ॥ ३ ॥

धन के आंतरिक गुण ।

धन संचय की नहिं कछु मेधा करत करत शत जन्म मरै ।
जेहिं कर्म को अन्त न कबहु अवधि न जाकी जानि परै ॥
जो त्रिकाल मैं व्है दुखदायक सद्विद्या को मूल हरै ।
अस कुपंथ मैं बिना अंध जन कहौ सुजन कब पाँवधरै ॥
रामचन्द्र जे जन सुख चाहहिं ते धन हित धिक्कार कहैं ।
भवबन्धनतैं मुक्त न होवहिं विविधि क्लेश दुःखादि सहैं ॥ १ ॥
आवत जात रहत दुखदायो सुख की जामैं गध नहिं ।
तौहु प्राणतैं प्रिय समुझत हैं पूर्ण अविद्या फैल रही ॥
जानै अधिक और का व्है तो जो धन जातो संग कहीं ।
दुर्गति दायक होय जनन हित पस्यो रहै सो आप यहीं ॥
सुख शान्ती को मूल विनाशत जन शुभेच्छु नहिं ताहि चहैं ।
भवबन्धन तैं मुक्त न होवहि विविध क्लेश दुःखादि सहैं ॥२॥
देवेच्छित नर तन अति दुर्लभ परम अमोलक आयु यहै ।
मणि मोतिनतै पलपल महँगी धनहित ताकूं खोय रहैं ॥
कूकर फिरत पेटहित घरघर कहीं टूक कहिं दंड सहै ।
त्यौं पामरहू फिरै भटकतौ कबहू न समता शान्ति लहै ॥
रामचन्द्र धिकधिक अस धनहिन सद्गति जातै दूर रहै ।
भवबन्धनतै मुक्तन होवहि विविध क्लेश दुःखादि सहै ॥३॥

भूख प्यास अपमान सहन कर धनको पुरुष कमायो है ।
मात पिता अरु स्वामी गुरु तैं छल करि ताहि छुपायो है ॥
दान पुराय मैं दें नहिं कौडी पेटहु मैं नहिं खायो है ।
बहु अनर्थ को भार बाँधि तिन अपने शीस धरायो है ॥
रामचन्द्र सो धन दे तियहित अपनो जीवन सफल कहैं ।
भव बन्धनतैं मुक्तन होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहैं ॥

नारी का वास्तविक रूपगुण।

दुखदायी तिय सम नहिं जग मैं यमदूती यह जानि खरी ।
दुःख ध्वजा की फ' जानि जो चोटी अपने शीस धरी ॥
नागिनहू तै अधिक विषैली प्रमदा जानहु जहर भरी ।
दृष्टमदा यह देखत ही जन चतुरहु जावहिं सुधि विसरी ॥
तियके नेह बँधे जे पामर ते सदैव यमलोक चहैं ।
भवबन्धनतै मुक्तन होवहि विविध क्लेश दुःखादि सहै ॥ १ ॥
आधि व्याधि की जानि प्रसूती सारे रोग लगावत है ।
रूप अविद्या नखशिख धारत सबकी बुद्धि भ्रमावत है ॥
मणी मंत्रतैं अधिक जानि वह जो तिय नित प्रति गावत है ॥
शूरवीर वेही जग विजयी तिय बन्धनतैं दूर रहैं ।
भवबन्धन तैं मुक्तन होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहैं ॥ २ ॥
भेद करन आचार्य अनूपम सब से रारि करावत है ।
पिता पुत्र में भेद करावत ऐसे मंत्र उचारत है ॥
तिय के मीठे वचन रसीले विषमोदक दरसावत हैं ।
ज्यौं वलि पशु को सेवा पोषण आगे शीस कटावत है ॥

करि सेवा यमपुर पहुँचावत सुजन न थाको दरस चहैं ।
भवबन्धन तैं मुक्तन होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहैं ॥ ३ ॥
सारे सुख को अन्त होय है जब जनि तियतैं बात करै ।
मोह भूप की है यह बेटो सुख शान्ती को मूल हरै ॥
आधि व्याधि सब आय त्वरित ही ताही तन में वास करैं ।
लाज घृणा सह शुभ मंगलहू तिय देखत सब दूर टरै ॥
रामचन्द्र सब दुःख मूर्त्ति तिय संत और सत्शास्त्र कहैं ।
भवबन्धन तैं मुक्तन होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहैं ॥ ४ ॥
मंत्र तंत्र अरु यंत्र शास्त्र में मंत्र न ऐसो पायो है ।
जप व्रत दानहु असफल दायक कर्म न कोउ जनायो है ॥
साधु सन्त ऋषि मुनि जनहू को अस प्रभाव नहिं भायो है ।
वशीकरण यह मंत्र न जानै कासैं नारि उडायो है ॥
रामचन्द्र नारी देखत ही जग विजयी तिय चरण गहैं ।
भवबन्धन तैं मुक्तन होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहैं ॥ ५ ॥
ज्ञानी गुणी वीर बहु देखे जिन प्रभाव जब गायो है ।
भिरहिं कालतैं जाय त्वरित ही रण में शीस कटायो है ॥
राज्यकोप और बल बुधि विद्या बहु सन्मान उपायो है ।
सुने न देखे नारि चरण गहि जिन नहिं शीस नवायो है ॥
रामचन्द्र कोउ जनन जीवतो जो मनतैं तिय खोट कहै ।
भवबन्धन तैं मुक्तन होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहै ॥ ६ ॥
तिय की कथा सुनत चित बिगरत देख लहै आतुरताई ।
बात करत ही सुधि बुधि बिसरत अनुचित बात कहै गाई ॥
निकट आत ही जन अचेत है ज्यौं आवेश चढ्यो आई ।
सुत नेह अरु धर्म बिसारत प्रेतरूप तब है जाई ॥

रामचन्द्र कोउ अन्य प्रेत नहिं प्रेतरूप तिय सुजन कहै।
भवबन्धन तैं मुक्तन होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहै ॥ ७ ॥

मदिरा की निन्दा।

मदिरा पीते लखे बहुत जन ते नहिं तनक विचारत हैं।
मन मचलावै नाक चढावैं मुख को स्वादु बिगारत हैं॥
मन प्रसन्न मुख शुद्धि निमित फिर वस्तु अनेकन खावत हैं।
ऐसी खोटी वस्तु एहि लखि क्यौं न प्रथम विसरावत हैं॥
ह्वै अचेत परिजाय पन्थ में जन दे दे धिक्कार कहै।
भवबन्धन तैं मुक्त न होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहैं ॥ १ ॥
ह्वै मदमत्त लराई झगरे करि बहुविधि पछतावत हैं।
राज कचहरी फिरैं भटकते जन जन शीस नमावत हैं॥
करहिं कुकर्म अनर्थ पानकरि अपनो कंठ बँधावत हैं।
लख चौरासी योनि देह धरि अमित भाँति दुख पावत हैं॥
वमन करहिं तन सुधि बुधि विसरत स्वान आय मुख स्वादु गहैं।
भवबन्धन तैं मुक्तन होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहैं ॥ २ ॥
बुद्धि विनाश करैं निज करतैं मन में अति हरषावत हैं।
रामचन्द्र ते नर अलभ्य तन अपने हाथ लजावत हैं॥
अपने नेत्र नीचता अपनी ते लखि नहिं सकुचावत हैं।
जाके पीतहिं ह्वै पिशाच सम पुनि ऐसी मँगवावत हैं॥
घृणा रूप सब कर्म तिनहु के सुजन न तिनको श्रवण करैं।
भवबन्धन तैं मुक्त न होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहैं ॥ ३ ॥

जो मदिरा मीठी हैती तौ जानै जन का का करते ।
जीवनमूरी ताहि अङ्ग लखि आपस में कटि कटि मरते ॥
अपनो शीस कटाय निमिप में देखत ही ताकू हरते ।
रामचन्द्र ते काल खडो लखि नहिं मन में रंचक डरते ॥
परम प्रीति वे करहिं नीच जे निकटहि अपनी मृत्यु चहैं ।
भवबन्धन तें मुक्त न होवहिं विविध क्लेश दुःखादि सहैं ॥ ४ ॥

नोकरी का वास्तविक रूप

दोहा

दीन वचन कह सर्वदा, नम्र होय कर जोरि ।
सुनै कबहु अनुकूल लखि, कबहु जाय मुखमोरि ॥ १ ॥
जो आवश्यक जानिकै, छिरावृत्ति कह ताहि ।
अस कठोर उत्तर मिलै, हृदय भस्म ह्वै जाय ॥ २ ॥
मुखतें कछु नहिं कहि सकैं, कहै मृपा सब कोय ।
दुखी क्षुधा अरु प्यास सह, काम करै सब सोय ॥ ३ ॥
रहै संकुचित चित सदा, स्वस्थ चित्त नहिं होय ।
पशु सम कंठ बँधाय का, निज भल करसक सोय ॥ ४ ॥
जब जन तजै स्वतन्त्रता, सब सुख जाँय विलाय ।
पराधीनता अस नरक, नाम एक पर्य्याय ॥ ५ ॥
रहै मलिन मन मुख पुरुप, पराधीन जब होय ।
धिक् धिक् ऐसी नौकरी, नर पशु करिहैं सोय ॥ ६ ॥
नौकर और गुलाम में, भेद तनकहू नाहि ।
करि विचार निश्चय लखी, हम अपने चित माहिं ॥ ७ ॥

स्वामीहू के गेह में, तनक नहीं सन्मान ।
व्याधि पराई शीस धरि, बन्यो फिरै ज्यौं स्वान ॥ ८ ॥
बिना कियेहू पाप के, रह अपराधी सोय ।
व्याकुलता चित में रहै, जानै का कह कोय ॥ ९ ॥
दुर्जन अपने स्वार्थवश, झूठी बात बनात ।
ताकी हैं सब सत्य सो, अपमानित ह्वै जात ॥१०॥
अपनीहू निर्दोषता, प्रगट न कह सक सोय ।
तनकहु उत्तर देन में, आज्ञा भंगी होय ॥११॥
बुद्धिवान गुणवान अरु, सद् व्यवहारी होय ।
सब गुण नौकर बनत ही, जांय रसातल सोय ॥१२॥
अनुचित माने जाय हैं, उचित सकल व्यवहार ।
दृढ वृत्त स्वामी भक्त हूँ, जाने जात गँवार ॥१३॥
अनुचितहू को उचित कहँ, स्वामी मरजी पाय ।
हाँ में हाँ करतो रहै, तब कछु दिवस बिताय ॥१४॥
अर्थ सिद्धि में यश नहीं, बिगरत ह्वै शिर चोट ।
भले भले सब स्वामि के, नौकर शिर सब खोट ॥१५॥
हैं समृद्धजन वृद्धहू, नौकर ह्वै दुःख पाहिं ।
रामचन्द्र विश्राम की, सुधि तिनकूँ कछु नाहिं ॥१६॥
विविध कठिन दुःखादि सह, तजत नौकरी नाहिं ।
भयो विश्वंभर मृतक यह, निश्चय तिन चित माहिं ॥१७॥
दो मुद्रा वेतन मिलै, चाहे मिलहु हजार ।
अपने अपने समय पर, हैं दोऊ जन ख्वार ॥१८॥
जाकी कोई अवधि नहिं, अन्त न कबहूँ होय ।
रामचन्द्र असपन्थ पद, सुजन न देवहिं कोय ॥१९॥

त्यौं तृष्णा के अन्त की, सीमा दीखत नाहिं ।
रामचन्द्र आजन्म हीं, भ्रमत रह्यौ दुःख माहिं ।२०॥
संचयहू दुखरूप अरु, रक्षा में दुख होय ।
अन्त त्याग दुखरूप यौं, दुखहि कमायो सोय ॥२१॥
कारागृह को दण्ड चित, कोउ जन चाहत नाहिं ।
तदपि प्रबल प्रारब्ध भटि, पहुँचावत तिहिं मांहि ॥२२॥
त्यौंहि भोग प्रारब्ध के, नौकर बनहिं कराहिं ।
फिर नाना दुःखादि तें, अपनो भोग भुगांहिं ॥२३॥
भोग कर्म प्रारब्ध के, बिन भोगे नहिं जाहिं ।
रामचन्द्र विश्वास दृढ़, यातैं कछु वश नाहिं ॥२४॥
सुतदारा परिवार की, प्रथम नौकरी कीन ।
तिन सब जग दासत्व को, सारटिफिकट देदीन ॥२५॥
जब सबतैं ममता तजै, तब पूरण सुख होय ।
आधि व्यधि संताप दुख, निकट न आवहिं कोय ॥२६॥
प्रीति होय तब आप में, सो स्वरूप सुखधाम ।
रामचन्द्र सो है तुही, सद्घन आतमाराम ॥२७॥

लोक व्यवहार

दोहा

अति चतुराई लोभ अति, करहिं नीक लखि जोय ।
कर्मनाश अपयश लहैं, मूढ़ कहावहिं सोय ॥ १ ॥
मुखतैं मीठी बात कहु, चित में करै दुराव ।
असजन के करतै लग्यो, भरै न कबहू घाव ॥ २ ॥

मुख आगे मन राखदे, पाछै करै अनीति ।
रामचन्द्र अस पुरुष से, रहिये सदा सभीति ॥ ३ ॥
सन्मुख नीके बचन कहु, पाछै करै कुचाल ।
असजनतैं बचओ भयो, तातैं नीको व्याल ॥ ४ ॥
जाको तेरे चित्त में, नहिं निश्चय विश्वास ।
रामचन्द्र अस पुरुषतैं, कबहु न हित की आस ॥ ५ ॥
अमृत विषयक पात्रमैं, रखे चहैं जन जोय ।
तिन के दोऊ बीगरैं, कार्यन आवत कोय ॥ ६ ॥
कपट प्रीति यक ठौरमैं, दोऊ रहसक नाहिं ।
ज्यौं काजी की बूँदतैं, दूध त्वरित फटजाहि ॥ ७ ॥
कपट अग्नितैं प्रीतितरु, त्वरित समूल नशाय ।
ज्यौं मयूख दिन कर लगे, बरफ सकल वहजाय ॥ ८ ॥
भ्रान्ती के चित आतहो, नते नेह व्हैं दूर ।
पुनि आपसमैं हित चहैं, रामचन्द्र ते क्रूर ॥ ९ ॥
जो पहले नीको मिलै, पाछै करै विकार ।
रामचन्द्र अस मित्रतैं, बचिये कोस हजार ॥ १० ॥
जो नीको व्है आदि मैं, अन्त्यम होय उपाधि ।
रामचन्द्र अस कार्यतैं, नीकी जानहु व्याधि ॥ ११ ॥
अग्रभाग दुखरूप अरु, नीको व्है परिणाम ।
रामचन्द्र नित कीजिये, सोहै उत्तम काम ॥ १२ ॥
जातै पहले प्रीति व्है, पाछै होय विगार ।
रामचन्द्र पुनि मित्र व्है तौहुन करै सुधार ॥ १३ ॥
संसकार विपरीत के, जे दृढ़ व्हैं चित मांहिं ।
स्मृति तिनकी चेतत रहै, हित कर नांहिं ॥ १४ ॥

तिय बालक अरु मूढ़को, नहि करिये विश्वास ।
रामचन्द्र जहँ करत ही देह धर्म धन नाश ॥ १५ ॥

मोह महिमा

दोहा

चतुर शूर ज्ञानी गुणी, कोउ न अस बलवान ।
नारि नयन शर लगत ही, जिन न धरे धनुवान ॥ १ ॥

छप्पय

नारी ठाकुर रूप होय बैठी घर मांहीं ।
पतिकूं सेवक जानि रैन दिन नाच नचाहीं ॥
हुकम टरैं जो कोय क्रोधकरि नेत्र दिखाई ।
कहैं विविधि दुर्वाक्य कथन जिनको भलनाही ॥
सुत तात मात अरु भ्राततैं दूर करत हट धारि यह ।
वह रामचन्द्र पशुरूप शठ तिय सेवक है दुःख लह ॥ २ ॥

कवित्त

नारी आगे जोरैं हाथ नारी ही कूं नावै माथ ।
नारी इष्टदेव और तीर्थ गंगा माई है ॥
नारी ही के अंग सारे धर्म अर्थ काम मोक्ष ।
स्वर्ग की नसीनी नारि त्रिवेनी जनाई है ॥
तात मात गुरु भ्रात तुच्छ भासैं नारी आत ।
नारी नाव भवसिन्धु तैरवे लखाई है ॥

रामचन्द्र प्राणप्यारी जानी नारि लोक मांहिं ।
रामहू ते अधिक यह नारी चित्त भाई है ॥ ३ ॥
तात मात गुरू भ्रात इष्टदेव स्वामी आगे ।
चोरी दंभ छल करि धनकूं बढायो है ॥
नैकहू न शंका धर्म यमहू तैं डर नाहिं ।
कौड़ी हेतु करि घात कंठकूं बँधायो है ॥
देंन दान पुण्य मांहि पेट भरि खावैं नांहिं ।
बांध के अनर्थ भार शीश पै धरायो है ॥
रामचन्द्र ऐसे सूम लोभी देखें लोक मांहिं ।
तिनहू लेजांय द्रव्य नारी कूं खवायो है ॥ ४ ॥
मंत्र यंत्र तंत्र शास्त्र वैदिक पुराण देखे ।
कोई मंत्र तंत्र ऐसो दृष्टि नाहि आयो है ॥
तप व्रत तीर्थ जाप कीने कर्म बहु भाँति ।
ऐसो फलदाता कोई कर्म नाहिं पायो है ॥
साधु संत मुनिहू को देख्यो ना प्रभाव ऐसो ।
जैसो मूल मंत्र नारी काहूते उडायो है ॥
रामचन्द्र नारि देखि सिद्ध औ गंधर्व यक्ष ।
विधि हरिहर लोक चेरा होय धायो है ॥ ५ ॥
ज्ञानी योगी शूरवीर कालदर्शी ऋषि देव ।
जिनको प्रभाव शास्त्र भाँ ति भाँति गायो है ॥
जीतें तीन लोक जिन मृत्यहू कूं जानी तुच्छ ।
इन्द्रहू तैं जय पाय यमकूं हरायो है ।
नैकहू न मानै शंक कालहू के आगे जात ।
नारी संग पाय तिन कंठ आ बँधायो है ॥

रामचन्द्र देव इन्द्र कोऊ ना समर्थ ऐसे ।
नारी के चरण जिन शीश ना नवायो है ॥ ६ ॥

पश्चात्ताप ।

दोहा

स्वर्ग धर्म अपवर्ग हम, तजे दारके नेह ।
रामचन्द्र उदर न भरवो, खाई निशिदिन खेय ॥ १ ॥
आयू रत्न अमोल हम, तिय हित दीन गमाय ।
रामचन्द्र पछतात वहु, अव का करिय उपाय ॥ २ ॥
चली गई सो तौ गई, उलटी आसक नांहि ।
रामचन्द्र अवहू जगौ, जितै प्राण तन मांहि ॥ ३ ॥

सवैया

नर तन दुर्लभ पायसु अवसर उच्च वंश मैं जन्म लियो है ।
पुरुष होय विद्या कुछ जानी पूर्व पुण्य यह उदय भयो है ॥
है कामान्ध दारमैं लंपट कृत्य न अपनो चित्त दियो है ।
रामचन्द्र यह खोट कत्रनकौ अपनो आप अकाज कियो है ॥४॥
मात पिता गुरु इष्ट वन्धुजन तिय सन्मुख लागे सव खारी ।
इह परलोक दुःख शिर लीने आशामात्र सुखकी चित धारी ॥
तौहुन सुखको लेशन पायो जेहि लगि यह सव आयु विगारी ।
रामचन्द्र धिक् २ असजीवन असतिय मुख क्यों धूरि न डारी ॥५॥

दोहा

सब अनर्थ को मूल है, नारि परम दुख देन।
रामचन्द्र चित्र न लखै, जो जन चाहत चैन ॥ ६ ॥

सवैया

देखत आधि लगै चितमै अरु संग हुये तन व्याधि लगावै।
होय हितू बन्धन गल डारत दास बना बहु नाच नचावै ॥
ज्यौं पशुनाथ नथ्यौ परवंश तै जायन सकैं तहाँ दुख पावै।
रामचन्द्र यह जानत हू शठ क्यौं निज करतैं कंठ बँधावै ॥७॥

सत्संग की महिमा।

छप्पय

जब दुख आवै शीस धैर्य धरि ताहि बितावै।
जन जनतैं क्यौं कहै कोउ नहिं ताहि दुरावै ॥
बिन भोगे नहिं टरै आदि की नीति कहावै।
दुख मेटनहि उपाय उलटि करि दुख ह्वै जावै ॥
अब रामचन्द्र तू चेत ज्यौं अग्रिम सुख की आश ह्वै।
कर सत्संग विचार दृढ़ परमानन्द प्रकाश ह्वै ॥ १ ॥
सुख को सुलभ उपाय सन्त सत्संग बतायो।
परम उच्च पदलह्यो जिनहि सत्संग सुहायो ॥
रंक होय सुरनाथ मूढ़ ज्ञाता ह्वै धायो।
छोड़ि अविद्या जाल परमपद तिन निरायो ॥
यह रामचन्द्र सिद्धान्त लखि यातैं भिन्न उपाय अब।
अन्य न भासत लोक मैं कहैं शास्त्र श्रुति गाय सब ॥ २ ॥

कुसंग की निंदा।

छप्पय

जो जन लहै कुसंग ताहि दृगसैं नहिं भासै।
तजै लाज मर्य्याद देह धन धर्मंहु नासै॥
अनुचित उचित विचार छुटैं सब बिनहिं प्रयासैं।
लहैं लोक अपवाद तासु चित तनक न त्रासै॥
वह रामचन्द्र ज्ञाता गुणी जो कुसंगतैं दूर रह।
अस जानत जो नांहि सो विविधि क्लेश दुःखादि सह॥ १॥
ब्राह्मण कूंकरि सुपच धर्म मर्याद छुटावै।
कुलटा होय कुलीन नाम वैश्या जग पावै॥
राज्य कोश करि भ्रष्ट भूपकूं दास बनावै।
गजतैं जनहिं उतार शीघ्र ही गधे चढावै॥
यह रामचन्द्र आगे खरी सब कुसंग महिमा लखहु।
यह जीवन ही क्षणभंग है क्यों व्यर्थ ही विषकूं भखहु॥ २॥

कवित्त

मन्दिर मैं न जावैं ईश्वर रूपकूं निहारैं नाहिं।
वेश्या को अलाप रूप नीक चित्त भायो है॥
लाजकूं विसार मान मर्य्यादा पंजार दीन।
पाय के कुसंग दुराचार ही सुहायो है॥
धर्मकूं न जानै विहित कर्मंहू पिछानै नाहिं।
नर देह सो सुअवसर नरक साज हित गमायो है॥
रामचन्द्र कवन भाँति अन्धकूं दिखायो जात।
सूर्य के प्रकाशहू मैं अन्धकार छायो है॥ ३॥

सवैया

आपहि उपजै नाहिं अन्य को कथन न भावै ।
करहिन तनक विचार जासु सन्मार्ग जनावै ॥
कहै पथ्यहित वचन तासु ग्लानी चित आवै ।
रामचन्द्र अस संग चित्त मैं दुख उपजावै ॥ ४ ॥
वधिरहि वचन सुनाय अन्धकूं रूप दिखावै ।
मूक कहै इतिहास पंगु गिरवर चढि धावै ॥
कमल पोय पाषाण बांझ तैं पुत्र जनावै ।
सरल स्वानकर पुच्छ पुरुष चितमैं हरपावैं ॥
सब रामचन्द्र दुर्लभ तदपि सुलभ यत्नतैं जन करै ।
अधमन की संगति किये कोऊ सुख नहिं तन धरै ॥ ५ ॥

दोहा

नरकहुको जावो भलो, जहाँ न सुखकी बात ।
जो कुसंगतैं सुख मिलै, तौहु न करिये तात ॥ ६ ॥
कठिन यत्न अगणित किये, तौहुन ह्वै सुख जोय ।
अरु कुसंगमैं ह्वै सुलभ, तौहुन लहिये सोय ॥ ७ ॥
जो सुख लख्यो कुसंग में, सो दुख रूप विचार ।
नरक दुःखकी अवधि है, दुःख कुसंग अपार ॥ ८ ॥

प्रारब्ध भोग की प्रबलता।

छन्द

जो ऋण लेय पुनः सो उलटा नहीं देन में यत्न उपावै।
श्रम अरु व्यय उद्योग विविधि कर ताहि राजगृह मृपा बनावै॥
त्यों दुखरूप विकल श्रम व्यय समेत ऋणराज दिलावै।
रामचन्द्र प्रारब्ध सुभट त्यों फल कुकर्म दुख विवश भुगावै॥१॥

दोहा

जो ऋण अपने कर लियो, सो तुम देहु सुचित्त।
न तु व्यय दुःख समेत बढ़, देनो परि है मित्त॥२॥
त्योंहि भोग प्रारब्ध के, आधि व्याधि तू जान।
रामचन्द्र हँसिभोगिनतु, अधिक दुःख व्है भान॥३॥
पूर्व समय दुष्कृत सकल, ज्यों तुम हँसि हँसि कीन।
ते आये दुख रूपधरि, त्यों प्रसन्न चित चीन॥४॥
जे तुम हँसि पैदा किये, ते भोगहु हँसि वीर।
रामचन्द्र अवरोध हित, यत्न अधिक व्है पीर॥५॥
जे अज्ञान दुष्कृत किये, फल भोगहु धरि धीर।
रामचन्द्र अब चेत ज्यों, व्है नहिं आगे पीर॥६॥
काल किये मा आज हैं, आज करै फल सोय।
रामचन्द्र अब चेत फिर, पछताये का होय॥७॥
ज्यों शर छूटयो त्वरित ही, बाधा करिहै जाय।
रामचन्द्र प्रारब्ध त्यों, सुख भोग कराय॥८॥

होय कुटिल प्रारब्ध तब, दुखद रूप सब कोय ।
मित्रादिक यमरूप अरु, अन्नादिक विष होय ॥ ९ ॥
जातैं जीवत विश्व अरु, सबको प्राण अधार ।
रामचन्द्र अन्नादि सो, विष सम करत बिगार ॥१०॥
याको कहा उपाय जो, हित कर रिपु सम होय ।
रामचन्द्र प्रारब्ध फल, मेट सकै नहिं कोय ॥११॥
मूल और फल और कुछ, यह अदृष्ट की रीति ।
रामचन्द्र नहिं टरि सकै, यहै आदि की नीति ॥१२॥
जातैं अमृत होय विष, विष अमृत व्हैजाय ।
रामचन्द्र अस दैवको, भोगहि नीक उपाय ॥१३॥
जै नौछावर प्राणहू, करैं हितैषी होय ।
रामचन्द्र अन्नादिहू, याचत दै नहिं सोय ॥१४॥
कटु कषाय औषधि त्रिविधि, ते लावहिं धन खोय ।
रामचन्द्र यत्नादि करि, दुखद रूप व्है सोय ॥१५॥

छप्पय

सकल प्रजा दुख सहै रोग प्लेगादिक आवैं ।
जलधर बरसैं नांहि भूमि अन्न न उपजावैं ॥
पितु सन्मुख सुत मरैं बाल बिधवा तिय भावैं ।
विविधि क्लेश दुःखादि मांहि जन आयु वितावैं ॥
अब रामचन्द्र कह जगत मैं को काकू दुख देत है ।
जन कुकर्म को भोग दुख अपनो आपहि लहत हैं ॥१६॥

दोहा

रामचन्द्र व्यवहार जग, करत हृदय अकुलाय ।
चर्मकार बेगार ज्यौं, विवश शीस लेजाय ॥१७॥

चर्मकार वृत्ती तजै, तब न धरै बेगार ।
रामचन्द्र अभिमान तन, तजै तबन बेगार ॥१९॥
रामचन्द्र प्रारब्ध भट, जान्यो जीव चमार ।
वृत्ती तन अभिमान लखि, जग व्यवहृति बेगार ॥१९॥
रामचन्द्र अपने किये, भोगहु धीरज धार ।
अब आगे पुरुषार्थ कर, ज्यौं न धरै बेगार ॥२०॥
रामचन्द्र अपनेहि कृत, सबके आगे आँहिं ।
हँसि भोगहु वा रोयके, बिन भोगे नहिं जाहिं ॥२१॥
हँसि भोगे दुख रह नहीं, रोये दुःख अपार ।
रामचन्द्र दुःख यौं मिटैं, ज्यौं विवाह मैं गारि ॥२२॥
तियके संतति ह्वा न मैं, मरणादिक दुख होय ।
ताहि दुःख मानै नहीं, सुख स्वरूप व्है सोय ॥२३॥
रामचन्द्र परमार्थ तैं, सुख दुख मूर्ति न कोय ।
जेहि जैसे मन मानले, सुखदुख भासत सोय ॥२४॥
मन मानै सुख दुःख व्है, तौ यह उत्तम रीति ।
रामचन्द्र दुख नाम तजि, सब सुख होय प्रतीति ॥२५॥
दुख बिछुरन सुख मिलन को, यत्न करैं नर क्रूर ।
सुगम रीति जानैं न ज्यौं, दुःख मूल व्है दूर ॥२६॥
सुख दुख के दो भेदतैं, सुखहू दुख सम होय ।
भेद हटै सब दुख मिटे, पूरण सुख व्है सोय ॥२७॥
दुःख भोग प्रारब्ध से न जानि ईश्वर मैं दाप ।

छन्द कवित्त

आपेकूं न जानैं लोक रीति कूं पिछानै नांहि !
आदि पुरुष नीति जिनके चित्तना समाई हैं ॥

सन्तकूं न मानै वेद वाक्य को न पावैं सार ।
मेर तेर करकै व्यर्थ आयु कूं बिताई है ॥
आधि व्याधि शोक नाना क्लेश भोगैं लोक माहिं ।
तौहू ना विचारैं करैं आगे कूं भलाई है ॥
आपेको कुकर्म मूढ़ ईश मैं लगावैं दोष ।
रामचन्द्र कहैं हम भोगैं ईश जो सुहाई है ॥ १ ॥
माता और पिता जाके पुत्र बन्धु कोई नांहिं ।
भयो ना विवाह तातैं एकाकी कहायो है ।
नाम रूप हीण ताके वासको ठाम कोय ।
राग द्वेष छीण तातैं निर्गुण जनायो है ॥
हैं न दोष लोक मांहि जनहू समर्थ देखि ।
जानिकै अनाथ ईश दोष यौं लगायो है ॥
रामचन्द्र दुःख भोग दैवतैं न जानैं मूढ़ ।
कहैं यों पुकारि हम कियो ईश पायो है ॥२॥

समय का प्रभाव ।

छप्पय

न्याय नीति नृप तजी बन्धु हित प्रीति विसारी ।
क्लेश करहि सुत तात लरहिं भर्त्ता सन नारी ॥
मा बेटिन मैं कलह शिष्य गुरु हित दैं गारी ।
धर्म कर्म सब त्यागि देह पोषण रुचि धारी ॥
यहं रामचन्द्र दुस्सह समय अब जीवत मरण भल ।
न तुं इन सबहिं विसारि तू श्री गङ्गा के शरण चल ॥ १ ॥

कवित्त

समय को प्रभाव देखि ग्लानि होत चित्त मांहि ।
सेवक आय स्वामी शीस आज्ञा चलाई है ॥
स्वानहू उपायो युद्ध केसरी के आगे आय ।
दौरिके चिरय्या ठानी बाजतें लराई है ॥
गादरे हू सिंह चाम ओढ़िके बनायो रूप ।
देश के विजय करन आशा चित लगाई है ॥
रामचन्द्र सारी बात समय के आधीन होत ।
अरँडन के बाग सिंह होत यों बिलाई है ॥ २ ॥

छप्पय

चोर कहावहिं साहू हरण परधन जिन जाना ।
वंचक परमप्रवीण लवारी अति बुधिवाना ॥
बहुरूपी धरि रूप भये जग सिद्ध सुजाना ।
साधु कहावहिं क्रूर जगत जिन तुच्छ पिछाना ॥
अब रामचन्द्र विस्मय अमित लखि जगकी विपरीति यह ।
भ्रष्ट भये व्यवहार सब अब आगे का होन चह ॥ ३ ॥

स्वार्थ मात्र संसार और निस्सारता ।

कवित्त

झूठो है प्रपंच तामें झूठे सब काज होत ।
स्वप्न के समान सोतो माया कार्य जान्यो है ॥
झूठे सारे तात मात झूठे सर्व पुत्र भ्रात ।
झूठो मेर तेर झूठे चित्त में समान्यो है ॥

झूठी सारी मोह प्रीति झूठी लोकलाज रीति ।
झूठकी दुकान मांहि झूठ ही विकान्यो है ॥
रामचन्द्र सत्यरूप तूही सारे लोक मांहिं ।
तेरे ही प्रकाश तैं यह झूठो जाल जान्यो है ॥ १ ॥

झूठो सारे रङ्क राव झूठे शत्रु मित्र भाव ।
झूठो जन्म मृत्यु जातैं सुख दुखादि मान्यो है ॥
झूठे सारे पुण्य पाप झूठे हैं वरदान शाप ।
झूठे स्वर्ग नर्क जानि चित्त अकुलान्यो है ॥
झूठे रागद्वेष ठानि झूठे कर्त्ता कर्म मानि ।
झूठे वरण आश्रम को पाशि मैं बँधान्यो है ॥
रामचन्द्र नाटक सो स्वप्न को विलास जैसो ।
दृष्ट नष्ट भ्रांति मात्र लोक जाल जान्यो है ॥ २ ॥

झूठे ही महल और मन्दिर ज़नात नीक ।
झूठे रानी राव तहाँ आयके बिराजे हैं ॥
झूठे ही दिवान और नौकर मुसद्दी लोग ।
झूठे ही निसान तहाँ नौबत बजत बाजे हैं ॥
झूठी सारी न्याय नीति झूठी लोक प्रीति रीति ।
झूठे धर्म कर्म शास्त्र झूठे साज साजे हैं ॥
रामचन्द्र सत्यघन आतम अनन्त तूही ।
तेरी सत्ता बिना सारे मिथ्या लोक लाजे हैं ॥ ३ ॥

स्वारथ ही के तात मात स्वारथ लागि पुत्र भ्रात ।
स्वार्थ ही तैं दार आर्य प्रीति कूं जनाई है ॥
स्वार्थ ही की न्याय नीति स्वार्थ जानि लोक रीति ।
स्वार्थ हित धर्म कर्म देह नीक भाई है ॥

स्वामी दास शत्रु मित्र स्वार्थ लागि बाँधैं शस्त्र ।
स्वार्थ ही की लोक मांहिं सारी यह लराई है ॥
रामचन्द्र नेत्र खोल आपेकूं सँभारि वीर ।
स्वार्थ विन पर सारी यहैं दुनियाँ पराई है ॥

सुख प्राप्ति का मुख्य उपाय ।

दोहा

तेरो वन्धन तै कियो, तूही सके छुटाय ।
रामचन्द्र या कार्य मै, अन्यः न करै सहाय ॥ १ ॥
सुख प्राप्ती की चाह मैं, फिरत सकल संसार ।
सुख साधन वाहर लखैं, त्यौं लहैं दुःख अपार ॥ २ ॥
जे पदार्थ संसार के, ते सबहैं दुख रूप ।
सुख आशा तिनतैं करैं, यह आश्चर्य अनूप ॥ ३ ॥
दुखद दृश्यतैं सुख चहैं, अति दुख पावहिं सोय ।
रामचन्द्र ज्यौं गरल भखि, अमर होन चह कोय ॥ ४ ॥
चित्र लिखे शसि सूर्य ज्यौं, करतन जगत प्रकाश ।
भौतिक दृश्य पदार्थ तैं, त्यौं न कवहुँ सुख आश ॥ ५ ॥
सुत दारा धन धाम अरु, राज्य कोश जिहिं होय ।
रामचन्द्र असजन घने, तदपि सुखी नहिं कोय ॥
तेहू सुख की चाह मैं, करते कर्म अनेक ।
तिन लिख क्यों न विचारते, यही वड़ो अविवेक ॥ ७ ॥

जब जनकूं मिलजाय सुख, इच्छा कछु रह नाहिं ।
रामचन्द्र इच्छुक जनहिं, सुख लेशन जग माँहिं ॥ ८ ॥
जे वहिरंग पदार्थ तैं, सुख ढूंढहिं ते क्रूर ।
अब अभ्यन्तर वृत्ति है, तब सुख है भरपूर ॥ ९ ॥
निज स्वरूप के भानतैं, अचल मेरु सम होय ।
रामचन्द्र आनन्द घन, चिद्घन व्यापक सोय ॥१०॥

त्रिविध विचार ।

छन्द

इन्द्रादि नरतन चाहते तामैं अमोलक आयु है ।
क्यौं व्यर्थ खोवै मूढ़ धी, अवसर न ऐसा पाय है ॥ १ ॥
सब भूमि मुक्ता रत्न भरदै तौभीन यक पल मिलत है ।
सो भांगिकै भाडै चली नर देह व्यर्थ लजात है ॥ २ ॥
नर देह अवसर पायके कृत कृत्य जो होवै नहीं ।
लहि गंगतट प्यासो रह्यो यह प्यास पूरि न व्है कहीं ॥ ३ ॥
माता पिता सुत दारये नहिं संग तुमरे जाय हैं ।
क्यौं व्यर्थ कंठ बँधात है रो रो के फिर पछताय है ॥ ४ ॥
जो आप माँगै और तैं तोकूं अयाचक नहिं करै ।
तू माँगि दीनदयालु तैं जो विश्वको सब दुःख हरै ॥ ५ ॥
पहले कियासो मिल रहा अग्रिम दिवस आजाय है ।
कटिबद्ध व्है पुरुषार्थ करि जो काम तुमरे आय है ॥ ६ ॥
होय भावी सो अटल अरु नहिं अभावी आत है ।
क्यौं व्यर्थ भटकत अन्ध ज्यौं विश्वास विन दुखपात है ॥ ७ ॥

सुख दुःख जे प्रारब्ध के विन भोग कबहु न दूर व्है ।
प्रतिकार भावी व्है न कुछ समझै नहीं ते क्रूर है ॥ ८ ॥
नल रामचन्द्र युधिष्ठिर हरिचन्द की सुनले कथा ।
वन वन फिरे प्रारब्ध वश नहिं यत्न उन कीनो वृथा ॥ ९ ॥
राजा प्रजा निर्धन धनी नहिं एक रस संसार है ।
नित सत्य पूरण ब्रह्म है यह मंत्र सबको सार है ॥१०॥
जब संग सज्जन पुरुष अरु सत्‌शास्त्र नित्य विचार व्है ।
मृग नीर सम जगकूं लखे तबत्वरित बेड़ा पार व्है ॥११॥
बलि दधीची अरु शिवी सर्वस्वतजि उपकार हित ।
जगमैं अटल यश करिगये सो शास्त्र अबलौं गात नित ॥१२॥
शुम्भादि रावण कंस कौरव बली अगणित व्है गये ।
सर्वस्व तजि माटी मिले ज्यौं कबहु नहिं जगमैं भये ॥१३॥
अपनी व्यथा तू भूलि कै पर निमित निशिदिन दुख सहै ।
कर स्वार्थ आवै काम सो क्यौं जानतो हु अजान व्है ॥१४॥
यह देह अपनो जानता तुमरा न कबहू होयसो ।
फिर और तेरा होय को क्यों देखता हू अन्ध हो ॥१५॥
अरि मित्र अपनो आपतू दूंजा न कोई है कहीं ।
तरि डूबि अपने हाथतैं कोई सहायक व्है नहीं ॥१६॥
जग इन्द्र धनु सम भासि है कछु सार दृष्टि न आतहै ।
अभिलाष भ्रमतैं करत शठ ज्यौं मृग मरीचिहिं धात है ॥१७॥
जाकूं फिरै तू ढूंढता सो भिन्न तोतैं है नहीं ।
नहिं मिलै चारहु धाममैं जल भिन्न द्रवता नहिं कहीं ॥१८॥
सातूं पुरी को खोजले मक्का मदाना ढूंढले ।
बाहर कहीं नहीं मिलसकै ज्यों गंध पुष्पहि न मिलै ॥१९॥

तेरी दशा वह होरही कस्तूरि मृगको जो भई ।
खोजत सुगन्धी मरगयो सब आयु दुख भोगत गई ॥२०॥

तजि दार कुलपरिवार तृणजल छोडि वनवन फिरत है ।
वाहर सुगन्धी नामिले दुख कूप भ्रमवश गिरत है ॥२१॥

ज्यौं पाय भ्रम ढूंढत फिरै जन अज्ञ अपने आपको ।
सो ताहि आपन मिल सके कर यत्न लह सन्तापको ॥२२॥

तू भूलि अपने आपकूं अरु औरतैं और हि भयो ।
निज रूप जानि कृतार्थ ह्वै लखि अंत कर्मादिक हुयो ॥२३॥

कर दूर यक आवरण तम सत्संग के उजियार तैं ।
फिर तूहि आपूं आय है निर्मुक्त ह्वै संसार तैं ॥२४॥

यह जानि सबको सारतू में बात छोटीसी कही ।
भ्रमरूप जगत असार लखि वहुभाँति जो श्रुति कहरही ॥२५॥

क्यों लहत दुःख अनेक तू जाको न कवहू पार है ।
जग तुच्छ जानि कृतार्थ ह्वै वेदादि को यह सार है ॥२६॥

नहिं कृत्य कछु संसार में केवल समझ की बात है ।
सोह न तोतैं होयतो क्यों व्यर्थ गाल वजात है ॥२७॥

जग जीव ईश्वर ब्रह्मये तोतैं हि सिद्धि पात हैं ।
सबको प्रकाशक है तुही तो विन न कछुहि जनात हैं ॥२८॥

बनि महेश्वर रूप तू वा नीचतें भी नीच है ।
यह वतन तुमरे हाथ है हमतैं कथन ही होय है ॥२९॥

व्यवहार कर सब जगत के रामचन्द्र सुजान है ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीव केवल ब्रह्म है ॥३०॥

दोहा ।

भला चहे तो कर भला, बुरा बुरे किय होय ।
शत्रु मित्र अपनो तुही, और न दूजा कोय ॥३१॥
अरिहूँ की लखि मृत्युकूं, हर्ष न करिये तात ।
यह ईश्वर कृत नियम है, सबके आगे आत ॥३२॥
सब धर्मनको मूल है, एक सत्य जग माँहिं ।
रामचन्द्र धारण किये, कार्य शेष रह नाँहिं ॥३३॥
अभय अन्नजल देन नहीं, हैं परमोत्तम दान ।
संचित जिनके श्रेष्ठ व्है, तेही करैं सुजान ॥३४॥
रामचन्द्र जो सुखचहै, करि सब जन को काम ।
यश सनेह जगमें बढै, राजी होवै राम ॥३५॥
रामचन्द्र चल रूप हैं, जगके सब अधिकार ।
जे उपकारी व्हैं न लहि, शेप रहै धिक्कार ॥३६॥
रामचन्द्र वन काष्ट तृण, वहैं नदी के नीर ।
समय पाय बिछुरै मिले, ज्यौं जगरीति सुधीर ॥३७॥
एक वृक्ष पर पक्षिगण, बैठे जलनिधि तीर ।
प्रात भये उड़िजाय सब, यही रीति जग वीर ॥३८॥
बिन चाहै जो दैवतैं, भयो देह संयोग ।
रामचन्द्र का दुःख जो, त्यौं ही होय वियोग ॥३९॥
मिलै सो निश्चय बिछुरि है, मुख्य जगत की रीति ।
रामचन्द्र अस जानि चित, करिये कातैं प्रीति ॥४०
मिलै न बिछुरै जो कबहु, सोहै अपनो आप ।
रामचन्द्र दृढ़ प्रीति करि, छुटै सकल संताप ॥४१॥

कपट पुरुष तृणरचित जिन, तृण ही के धनुबान ।
ज्यों रक्षाहित क्षेत्र के, रोपहिं कृषक सुजान ॥४२॥
त्योंही ये रक्षक प्रजा, तिन लखि व्है चित खेद ।
वह अचल यह चलत है, रामचन्द्र असभेद ॥४३॥
अचल करहिं रक्षा कुछक, स्वयं कृषिहि नहिं खाहि ।
चल रक्षा तो का करै, आप खांहि लेजाहि ॥४४॥
रामचन्द्र विपणी जगत, तू आयो जिहिं काज ।
त्वरित होहु कृत कृत्य ज्यों, जात न आवहिं लाज ॥४५॥
पेट भरन संतति करन, पशु पक्षिहु को काम ।
रामचन्द्र मैं अधिकता, लजादियो नर नाम ॥४६॥
पशु पक्षी जो नित करत, सोही तुमहू कीन ।
रामचन्द्रनर नामको नाम क्यों, नहिं अबलौं तजिदीन ॥४७॥

लक्ष्मी का चंचल रूप

दोहा

धर्म अग्निनृप चोर, हैं लक्ष्मी के भ्रात ।
ज्येष्ठ भ्रात अपमानतैं, तीनूं ताहि नशात ॥ १ ॥
दान भोग अरु नाश त्रय, धनगति कहँ सब कोय ।
रामचन्द्र दो स्ववश लखि, नाश विवश ही होय ॥२॥
जो परमोत्तम कार्य अरु, करन स्ववश जेहिं होय ।
रामचन्द्र तौ न करैं, नीच नार की सोय ॥३॥
लक्ष्मी चंचल भाव है, स्थिर कबहु रह नाहिं ।
रामचन्द्र दुख होय दो, पुत्र छोड़ि चलि जाहि ॥४॥

वेश्या लक्ष्मी दोउन की, नितनव जनतैं प्रीति ।
रामचन्द्र वेश्या सदृश, त्यागै जानि अनीति ॥५॥
धन अरु तियके रूपमैं, लक्ष्मी के दो भेद ।
रामचन्द्र इनतैं बँध्यो, लहै विश्व दुख खेद ॥६॥
अधिक एकतैं एक दोउ, जग विजयी बलवान ।
रामचन्द्र अस कवन कवि, करै यथारथ गान ॥७॥
जीव मृत्यु के मुख वसै, तदपि भोगही चाहि ।
ज्यौं अहिमुख दुर्दर पसो, मशक तृप्तिहित खाहि ॥८॥
चित्र लिखै जलधार पर, वन्ध्या पुत्र जनाय ।
रणजीतै शस शृंगतैं, भोगेच्छा नहिं जाय ॥९॥
विजली करतैं गहे, गांठ लगात तरंग ।
करै चूर्ण आकाश को, तदपि न रुकै अनंग ॥१०॥

श्री रामावतार तथा रामनाम की महिमा ।

छन्द

जिहिं जपंत शेष महेश शारद ध्यान मुनि मन लातहैं ।
जिहिं सकृत धारन चित्तमैं अघ कोटि जन्म विलात हैं ॥१॥
व्है हानि जब जब धर्म की वृद्धी अधर्म जनात है ।
स्थापन करन तब धर्म पथ बहुरूप आतम सुजात है ॥२॥
त्यौं राम सुर मुनि काज हित नरदेह जग धारन करी ।
करि दुष्ट जन त्तय त्वरितही मुनि साधु जन पीरा हरी ॥३॥

शवरी निशाचर भालुकपि ऋषि नारि गजगुह जे भये ।
मख शौच सरि रहित ये शुभकर्म जिन कवहुन किये ॥४॥
ये राम केवल नाम तैं भवसिन्धु सारे तर गये ।
श्रीराम घर घर गमन कर उद्धार तिन सबके किये ॥५॥
पतित अधम अजामिलहिं जब करुणागत हरि व्है गयो ।
तजि कठिन यमपुर यातना वैकुंठ पथ सीधो लियो ॥६॥
अस कवन कवि संसार मैं जो रामकी महिमा कहै ।
निगमादि पारन पायहैं ब्रह्मादिहू नहिं चित लहैं ॥७॥
महिमा उचारन राम को चहुं वेद रामायण भये ।
नहिं सिंधुमैं तैं विन्दु यक कहसके श्रमकर थकगये ॥८॥
होवैं अपन जो रामको जग ताहि रामायन कहैं ।
लखि दृश्य राम स्वरूप ज्यौं आनन्द आपहि मैं लहैं ॥९॥
उच्चारतैं मुख मिष्ट व्है अरु चित्त मांहिं प्रकाश व्है ।
अन्तः करण की शुद्धि व्है आनन्द परम विकाश व्है ॥१०॥
जिहिं पाय सत्ता सिन्धु भूधर भूमि थिरता लहत हैं ।
शसि सूर्य करत प्रकाश नभ मैं मेघ छाये रहत हैं ॥११॥
व्हैं वायु वर्षा सकल जग व्यवहार सत्ता पायके ।
नित्य सत्य अरु जगसार है यह कहत वेद जनाय के ॥१२॥
चक्षुका वह चक्षुहै अरु प्राण का भी प्राण है ।
मन बुद्धि का मनबुद्धि है अरु प्राण का नित प्राण है ॥१३॥
ता बिन समस्त असार जड़ जो अक्ष गोचर हो रहै ।
परमात्म अलख अखंड पूरण कथनतैं जो दूर है ॥१४॥
सो राम सत्‌चित्‌ रूप अरु प्रज्ञान जग अभिराम है ।
अद्वैत शुद्ध अनन्त अज परब्रह्म सम निष्काम है ॥१५॥

नहिं होय तेरे दूर अरु गृहणादितें नित दूर है ।
नभ सम सदा सब ठौरहै व्यापक जगत भरपूर है ॥१६॥
आनन्दघन चैतन्यघन अरु सत्यघन सुखधाम हैं ।
सो रामचन्द्र स्वरूप है जिहिं वेद गावहिं रामहैं ॥१७॥

छप्पय

शोभित सारँगपाणि वसन वलकल तन सोहैं ।
चन्द्रानन छवि निरखि कोटि मन्मथ मन मोहैं ॥
जटा मुकट वनमाल निरखि मुनि मन ललचावैं ।
प्रबल पीन भुजदंड मत्तगंज सुंड लजावै ॥
सो मम उर दंडक वास करि कामादिक मृगया करहु ।
अब रामचन्द्र कृतकृत्य तुम क्यों यमके डरतें डरहु ॥१८॥

कवित्त

लाज की जहाज दया सत्य को खजानो पूर्ण ।
धर्म की पता का सोहै जीवन मूल प्रान की ॥
पातिवृत्त अनूप ताको सुन्दर स्वभाव रीति ।
ध्यात रामनाम जानें रीति नीति ज्ञान की ॥
शुद्ध मिष्ट बोलै वैन उचित भांति देन लैन ।
तनक ना सुहावै वात सोहसद मान की ॥
रामचन्द्र लोक मांहिं कोई अैसी भासै नांहिं ।
जैसी प्राण प्यारी राजै एक प्रिया जानकी ॥१९॥

छप्पय

पालत कुल मर्याद वचन कटु कबहुन भाखै ।
पति ही ईश्वर जानि चरण पंकज चित राखै ॥

वेद रूप पति वचन पालना करि हरषावै ।
उचित सकल व्यवहार चित्तमैं ताहि सुहावै ॥
पति सेवा फल चितधरै रक्षा अपने प्रान की ।
वह रामचन्द्र जन धन्य है जिनहि इष्ट अस जानकी ॥२०॥

विस्मय रूप संसारी व्यवहार ।

छन्द

लखि रीति परम विचित्र गत विस्मय अमित चित्त होत है ।
जन देखतेहु न देखते अरु जानतेहु अजान हैं ॥ १ ॥
दुख मूल भौतिक वस्तु सब सुखरूप जिनकूं मानते ।
रहतेहु आवत जात दुखमय सो यथार्थ न जानते ॥ २ ॥
सुत दार कुल परिवार अरु धनधाम रथहय गज घने ।
संगी न कोई होय हैं अपने हितू जे तुम गने ॥ ३ ॥
सबतैं प्रथम व्है योग जग मैं देह अरु जीवात्म को ।
सों संग कबहुन जाय है फिर और तेरा होय को ॥ ४ ॥
तेरा न कोई है न व्है सब स्वार्थ को संसार है ।
विन प्रयोजन मुख न बोलत मांहिं प्रचार है ॥ ५ ॥
क्यौं व्यर्थ कंठ बँधात है धन भूमि हित संसार मैं ।
इन लहै जानै कौन तू दुख सहै योनि अपार मैं ॥ ६ ॥
सब वस्तु यह संसार की संसार ही मैं रहत हैं ।
जन मूढ़ अपनी करनमैं संकट वृथा ही लहत हैं ॥ ७ ॥

मुक्ती चहै क्यों अन्यतैं ले आप बन्धन साथ मैं ।
बन्धनहु तेरो तैं कियो मुक्तीहु तेरे हाथ मैं ॥८॥
देहादि दृश्यपदार्थ मैं करि राग तैं बन्धन लह्यो ।
व्है विरागी इनहिं तैं निर्मुक्त बन्धन व्है गयो ॥९॥
क्यों लहैं दुःख अपार जन थिर रखन भौतिक देह मैं ।
लरत जरत रोत हैं क्यों दार सुत धन नेह मैं ॥१०॥
जवलौं स्वरूप प्रमाद है तबलौं अहन्ता देहमैं ।
त्यौं त्यौं हितू लखि देह के जन बँधत तिन तिन नेहमैं ॥११॥
जब भान होय स्वरूप अरु देहात्म बुद्धि विलाय है ।
तब दार सुत धन नेह बन्धन निकट कबहुन आयहै ॥१२॥
क्यों दुःख व्याधि निवृति हित जन मह श्रम बहु करत है ।
क्यों कीन पूर्व प्रसन्न व्है अब भोगतैं क्यों डरत है ॥१३॥
जे कीन पूर्व अनर्थ ते दुखरूप व्है अब आत हैं ।
कोई न तिनहिं निवारिहै भोगे विना नहिं जात हैं ॥१४॥
तेरे किये कूं दूसरा कोउ मेटसक नहिं होत है ।
हँसि किये हँसि हँसि भोगि अब क्यौं अन्य जन ढिग रोत है ॥१५॥
प्रारब्ध बल नहिं जानि है जाको न कछु प्रतिबन्ध है ।
जो औरतैं औरहि करै नहिं लखै सो जन अन्ध है ॥१६॥

पथिक की सुगमता से संसार यात्रा ।

दोहा ।

जेती ममता दृश्य में, ते तो ता शिर भार ।
रामचन्द्र चलती समय, ते तो दुःख अपार ॥ १ ॥
चलत समय सुख जो चहै, ममता त्यागै सोय ।
रामचन्द्र अस पान्थकूँ, चलत दुःख नहि कोय ॥ २ ॥
ममता तेरी अति कठिन, परी पांवके मांहि ।
रामचन्द्र संसार तैं, निकरन दे सो नाहिं ॥ ३ ॥
ममता बन्धन अति प्रबल, बँध्यो सकल संसार ।
एक पांव नहिं चलि सकै, किहिं विधि है भवपार ॥ ४ ॥
निर्मम तीव्र कुठार सन, ममता काटै जो ।
रामचन्द्र ता पुरुष को, दुःख नाश सब होय ॥ ५ ॥
मिटि ममता समता लहै, शान्ती नेरे आय ।
रामचन्द्र कृत कृत्यसो, ताहि समय है जाय ॥ ६ ॥
दौरै चालै रह खडो, बैठि लेटि रह सोय ।
उत्तर उत्तर कार्य मैं, ते तो ही सुख होय ॥ ७ ॥
त्यौं संसारी कार्य मैं, जे तो श्रम कर जोय ।
रामचन्द्र निश्चय लखहु, ते तो ही दुःख होय ॥ ८ ॥
नहीं भोग प्रारब्ध में, न्यून अधिकता होय ।
रामचन्द्र वह अज्ञजन, घटि बधि चाहै सोय ॥ ९ ॥
दृश्य पदारथ जगत के, सुख दुखकर कोउ नाहिं ।
ममता अरु सत् भावना, विविधि दुःख दरसाहिं ॥ १० ॥

पथिकशाला रूप जगत।

यह जगत पथिकशाला है रे भाई तहँ लख चौरासी योनि गेहदरसाई।

यह जीव मुसाफिर बैठि तिनों के मांई,

लहै पुराकृत भोग शुभाशुभ आई॥

यहां रहा न कोई सदा रहे भी नाईं,

यह दृश्य सकल चलरूप सोचि मनमांई॥ १॥

जब आयु लैन रोगादिक गाडी आवै,

भोग अन्त प्रारब्ध टिकिट मिल जावै।

तब अंजन मृत्यु बलिष्ट खींच कर धावै,

बहु यत्न कियेहू पलक ठौरि नहिं पावै॥ २॥

यहां रहा न कोई सदा रहा भी नाईं,

यह दृश्य सकल चलरूप सोचि मनमाईं॥ २॥

यह करन मुक्ति व्यापार सेठ बनि आयो,

पूँजी परम अमोल आपु संग लायो॥

वंचक मन नेरे आय ताहि विरमायो,

इन्द्रिय गण कीने संग विषय सुख भायो॥ ३॥

यहां रहा न कोई सदा रहै भी नाईं यह दृश्य०॥ ३॥

गज वाजि राज धन धाम कोष सुत नारी,

सप साज सजावत मूढ जानि सुखकारी।

सो संग चलै कोउ नाहिं तजत दुख भारी,

ये आत जात दुख देत रहत सुखहारी॥ ४॥

यहां रहा न कोई सदा रहै भी नाईं यह दृश्य०॥ ४॥

जो है एकाकी पुरुष संग नहिं कोई,
नहिं कंथा अरु कोपीन लेयदे जोई।
सो गाड़ी चलती देखि मुदित मन होई,
नहिं ऐसे जन हैं बहुत लखे विरले जन कोई ॥ ५ ॥
यहां रहा न कोई सदा रहै भी नाई,
यह दृश्य सकल चलरूप सोचि मनमाई ॥ ५ ॥

वृद्धावस्था में लोक व्यवहार ।

दोहा ।

जिन हित परम अनर्थ कर, कंठ बँधायो दौरि ।
देखि वृद्धता सकल जन, त्वरित गये मुख मोरि ॥ १ ॥
भुज पसारि नित मिलत जे, सुत बान्धव कुल भ्रात ।
एक वृद्धता आत ही, कोउन पूछत बात ॥ २ ॥
संगी जबलौं तरुणता, सकल हितू सुत भ्रात ।
अहो वृद्धता आत ही, कोउ निकट नहिं आत ॥ ३ ॥
इन्द्रियादिहू है सिथिल, तजन चहत यह देह ।
प्रबल मोह तृष्णा भये, लखे मित्र हम येह ॥ ४ ॥
ज्यों जन हमकूं तजि दिये, मैं हु तजहु संसार ।
मन हमरे कूं वृद्धकरि, जासु छुटै व्यवहार ॥ ५ ॥
करहु येक उपकार यह, जो तुमरे कर होय ।
तृष्णा मोह मिटाय तौ, तुम सम हितू न कोय ॥ ६ ॥

जे नित प्रिय हित बोलते, चरण पलोटत जोय ।
पड्यो रहेरे डोकरे, अस कटु भाखें सोय ॥ ७ ॥
रूखी सूखी जो मिलै, तातैं करि गुज़रान ।
नहीं तो अपनो पन्थ गह, अबही करहु पयान ॥ ८ ॥
दारा मीठे वचन कह, निशि दिन करती बात ।
अब बूढे ढिग बैठते, ताहि लाज है आत ॥ ९ ॥
पति तजि सुत लालन करै, अब इनतैं सुख होय ।
बूढें बृषहि किसान ज्यौं, करै न आदर कोय ॥१०॥
अरे बुढापे बावरे, तू बिन चाहे क्यौं आत ।
निर्मानी अस क्यौं भयो, अपनी हास्य करात ॥११॥
अरे पापी बेहया, सुनुहु बुढापे बात ।
क्यों न मरयो तू वृद्ध ह्वै, सबकूं कष्ट दिखात ॥१२॥
करूं कुयश नतु जगत मैं, दुख तुमरे चित आय ।
भले पुरुष को कुयशही, जगमैं मरण कहाय ॥१३॥
स्वार्थ मात्र संसार सब, हितू न अपनो कोय ।
अस जग तुच्छ असारमैं, चितदें पामर सोय ॥१४॥
रामचन्द्र अस जगत मैं, तू मति कर विश्वास ।
सुतदारा परिवार तैं, त्यागदेहु सुख आस ॥१५॥
जिहिं नित सन्मुख देखि है, हितकर काको होय ।
रामचन्द्र क्यौं अन्धपुनि, और यत्न का होय ॥१६॥
अहो रीति संसार की, काको कोई नांहिं ।
रामचन्द्र का होय जो, देखत देखै नांहिं ॥१७॥
चली गई सोतौ गई, रहीहु रहती नांहिं ।
रामचन्द्र इस आयुको, व्यर्थ सोच मन मांहिं ॥१८॥

अहो तरुणता यौं गई, ज्यौं कपूर उडिजात ।
इत उतकूं ढूंढत फिरूं, भटके दृष्टि न आत ॥१९॥
यथा शृंग शस शीसतैं, ज्यौं स्वप्ने की बात ।
यथा चित्र जलके न त्यौं, दृष्टि तरुणता आत ॥२०॥
कुब्ज पृष्टि कर जन सुघर, भू देखत मग जाय ।
मिली तरुणता धूरिमें, इमें कहीं मिलिजाय ॥२१॥

द्विजादिक वर्णों की दुरवस्था ।

छन्द

लखि आधुनिक जग रीति कूं आश्चर्य यह चित आत है ।
का भूमि ऊपर होगई आकाश नीचे जात है ॥ १ ॥
यह स्वप्न है वा भ्रम भयो जग रीति सब उलटी भई ।
देखो सुनी शास्त्रादितैं सो आंख देखत खोगई ॥ २ ॥
कहँ रीति वरणाश्रम गई कहँ धर्म कर्म विलागयो ।
निज धर्म उदर भर लख्यो गुरु मूलमंत्र यही दियो ॥ ३ ॥
जे उच्चवरण द्विजादि की संतान आपहिं मानते ।
ते ब्रह्मचर्यादिक व्यवस्था तनक भी नहिं जानते ॥ ४ ॥
संस्कार षोडशरीतितैं माता पिता हू नहि किये ।
ते नाममात्र द्विजादि हैं नित कर्मफलहू तस लिये ॥ ५ ॥
वह रीति बाल विवाहतैं नहिं ब्रह्मचर्यहि जानते ।
किन्तु अपनी नारितैं परदार नीकी मानते ॥ ६ ॥

तिय जानिपति प्रतिकूल तव पर पुरुष मैं चित लात हैं ।
निकट मैं जो नीच है तौ ताहि हृदय लगात है ॥ ७ ॥
ते उच्च नीचे वरण का मन में विचार न लात हैं ।
विश्वास अपनो दृढ़ करन यक पात्र भोजन पात हैं ॥ ८ ॥
जो दोउन मैं तैं येकहू मदमांस को भक्षण करै ।
तौ दूसरे कूं प्रेमवश पानादि मैं संगी करैं ॥ ९ ॥
परदार या पर पुरुषतैं लंपट सदा जे रहत है ।
छल कपट चोरी आदि के दुख क्लेश नाना सहत हैं ॥१०॥
जे जार संग आशक्त तिय तिनकी अलौकिक बात हैं ।
देखी सुनी प्रत्यक्ष हम लज्जा कथन मैं आत है ॥११॥
विधवाहु सधवातैं अधिक नित नये रूप बनात हैं ।
ते द्विजादि गृहस्थ है वरणाश्रमहिं लजात हैं ॥१२॥
जब होय विधवा गर्भ तैं ताकी निवृत्ति करात है ।
यौं सुपचहू ते अधमते यह नीतिशास्त्र जनात है ॥१३॥
जे भ्रूण हत्या आदि के अपराध अपने शिर लहैं ।
हा नाथ निश्चय जानते विथादि तिन कैसै कहैं ॥१४॥
अपमान निन्दा घृणा के तिन पात्र सबहिं बनादिये ।
निश्चय द्विजादि ललाट मैं टीके कलंक लगादिये ॥१५॥
नहिं होय सब जन येकसे जे उच्चवरण कहात हैं ।
हां बहुत जन या समयमैं निज धर्मकूं बिसारत हैं ॥१६॥
यौं द्विजादिक तियनमैं जो नीचतैं सन्तान है ।
गुण रूप कर्म स्वभाव तैसे सबहिं तिनमैं भानहैं ॥१७॥
त्यौं द्विजादिक पुरुषतैं शूद्रादि तिय संतति लहैं ।
उच्चाभिलाशा रूपगुण तैसेहि सो शिशु जन गहैं ॥१८॥

यह बात मैं बहुधा लखी सबकेहि अनुभव मांहि है।
प्रत्यक्ष होय विचारतें जस बीज तस फल पाहि हैं ॥१९॥
जिहिं पाप मोचनि शास्त्र कह शिवराज निज मस्तक धरी।
महिमा अनन्त अपार गुण जग परम पावन सुरसरी ॥२०॥
जो परम पालक विश्वको आधार जगत जानत है।
उत्पत्तिलय सब जगत कर जगदीश नाम कहावत है ॥२१॥
ते द्विजादिक वरण तिनकूं न्याय मन्दिर जायके।
जगदीश गंगा धारि कर कहँ बात मृषा बनायके ॥२२॥
रागादि के वश होय अथवा कछुक लोग लगाय के।
जगदीशकूं प्रत्यक्ष कर कहँ कूटधर्म गमायके ॥२३॥
शूद्रादि अन्त्यज वरणते निज धर्म को पालन करैं।
नहीं मृषा कूट बखानते जब गंग को कर पर धरैं ॥२४॥
षट्कर्म ब्राह्मण हित कहे सो सबहि लखे असार हैं।
निज धर्म पालन पेट को यह मुख्य जान्यो सार है ॥२५॥
यौं नीच उन्नति चाहते अरु द्विजादिक अवनती।
संस्कार जिनके होय जस तैसीहि है तिनकी मती ॥२६॥
मतिरूप तिनकी है गती यह श्रुति परम प्रमाण है।
यौं अधोगति लहत हैं यह सकल शास्त्र बखाण है। २ ॥
बलवान् डाकू चोर तैं रक्षा करण क्षत्रिय भये।
ये आप डाकू तैं अधिक धन भूमि हारी हो गये ॥२९॥
परदार धन भू हरण ही यह मुख्य क्षत्रिय धर्म है।
इन हित अनेक उपायते जग सार जाने कर्म हैं ॥२९॥
जो दान दीने भूमि धन तिनकों हरण ये करत हैं।
इन दान करदी कन्य का क्यों उलटि ताहिन गहत है ॥३०॥

यह एक इतनी न्यूनता चतुराई में क्यों कर रही ।
करि पास पूर्ण अधर्म में यह पूर्ति सब होगी सही ॥३१॥
शुंभादि रावण कंस कौरव वली अगणित हो गये ।
सब विश्व निज वश कीन पर दत्तापहारीनहिं भये ॥३२॥
रघु वाण वलि सगरादि की गाथा पुराण जनाय हैं ।
उन संग धन भू नहिं गये इन संग निश्चय जाय हैं ॥३३॥
गो भूमि कन्यास्वर्ण धन संकल्प कर पूर्वज दिये ।
ये चतुर तिनहिं वखानते क्यों कर्म खोटे तिन किये ॥३४॥
जन मित्र द्रोही अरु कृतघ्नी विश्वासघाती जे भये ।
यावत् दिवाकर चन्द्र जग में नरक ही में वस गये ॥३५॥
सब ही अधर्म अनर्थ को बहुभांति प्रायश्चित लिख्यो ।
दत्तापहारी तो समय में एकहू तिन नहिं लख्यो ॥३६॥
लखि स्वान अरु दत्तापहारी दोऊ नाम यक पर्याय हैं ।
दी भूमि उलटी लेंय यह वह वमन करिकै खाय है ॥३७॥
यह स्पष्टि क्रम जबलौं रहै यह नरकही में वसत हैं ।
शास्त्र तिनकी निष्कृती दूजी तरह नहिं कहत हैं ॥३८॥
जे बीज वर्बुर बोय हैं ते मिष्ट फल नहिं खात है ।
कर कर्म घोर अनर्थ ते बहु जन्म धरि दुख पात हैं ॥३९॥
सुतदार धन परिवार ये नहिं सग कोई जात हैं ।
अपनी व्यथाकूं भूलि ते पर निमित कंठ वँधात हैं ॥४०॥
इतिहास कथा पुराण सुनते तदपि नाहिं विचारते ।
हँसि भोगि कर प्रारब्ध फल क्यों दुःख नाहिं निवारते ॥४१॥
नल युधिष्ठिर राय अरु हरिचन्द आदिक जे भये ।
ते भोगि सब प्रारब्ध फल संसारकूं ते तजि गये ॥४२॥

हा नाथ व्याकुलता बड़ी मन में अहर्निशि है लगी।
आगे द्विजादिक जन्म लें तिनकी दशा का होयगी ॥४३॥
जगदीश तेरी शरण हम प्रण गहहु अपने नाम को।
तुम दीनबन्धु कृपालु हो क्यों लखहु हमरे काम को ॥४४॥
है आश तुमरी हे कृपानिधि कोई न दूजा द्वार है।
अपराध हमरे कर क्षमा ज्यों होय बेढ़ा पार है ॥४५॥
तुम सत्य दीन दयालु हो पूरण दया यह कीजिये।
सबही द्विजादिक वरण हित सद्बुद्धि त्वरतहि दीजिये ॥४६॥
स्व वस्तु जानैं आपनी दूजी से घोर घ्रणा करैं।
छल कपट पाखंड ईर्षा द्वेष की जड़ को हरैं ॥४७॥
भ्रातत्व ह्वै सब जगत तैं अरु प्रेम पालन रीति ह्वै।
उपकार सेवा कार्य की सब के हृदय में नीति ह्वै ॥४८॥
यों पूर्वजों के मार्ग पर चलने का इन प्रस्थान हो।
गौरव पुरातन पाय अपना शीघ्र हो उत्थान हो ॥४९॥
शबरी निशाचार भालुकपि सब धर्म कर्म विहिन ये।
उद्धार कीनो जाय गृहलखि दीन हीन मलीन ते ॥५०॥

दोहा।

रामचन्द्र रघुनाथ बिन, अन्य शरण्य न कोय।
जाकी कृपा कटाक्षतैं, प्राप्त परमपद होय॥५१॥

वेश्या और वकील का समान कार्य

दोहा ।

संस्कार जिनके मन्द है, वृद्धि करन तिन येह ।
वेश्या और वकील को, बन्यो जगत में देह ॥ १ ॥
मनुज रूपतै येक सब, भिन्न भिन्न व्यवहार ।
इनके प्रेमी जनन को, कठिन होय उद्धार ॥ २ ॥
हिन्सक पशु सर्पादि के, भखे मरत यक बार ।
इनके संगी जनन की, संख्या मृत्यु अपार ॥ ३ ॥
हठी कुकर्मी अज्ञजन, धन वैभव जिन पास ।
अत्याचारी जनन के, ये निशदिन रहँ दास ॥ ४ ॥
तिनके धन बल हरण में, करत परम अनुराग ।
ज्यौं रस ईख निचोरि पुन, करत भुसी को त्याग ॥ ५ ॥
चित प्रसन्न उनको करैं, जिनको इनमैं नेह ।
धर्म और धन हरण को पहुँचावत मम गेह ॥ ६ ॥
चाहे जैसी जाति है, नीच उच्च अकुलीन ।
तनमन अर्पण त्वरितकर, है ताके आधीन ॥ ७ ॥
नित नूतन जन ढूँढ़ते, त्याग पूर्व करि देहि ।
धनी पुरुष के मिलत ही, पति अपनो करलेहि ॥ ८ ॥
पारतंत्र्य वश है दुखी, येक पुरुष की नारि ।
सौ पुरुपन की नारि ये, सब सुख देहि विसारि ॥ ९ ॥
मुखतैं ना कबहु न कहैं, कोऊ कैसो होय ।
ये उपकारी वस्तु दोउ, हितू धनिन के सोय ॥१०॥

वेश्या और वकील दोऊ नाम येक पर्याय ।
हरै धर्म धन जनन कों, कोविद अस कहँ गाय ॥११॥
अनुचित उचित विचार तजि, धनहित कंठ बँधाहिं ।
धनभोगी ह्वै कवन ये, अमित जन्म दुःख पाँहि ॥१२॥
यद्यपि मन मैं जानते, गर्हित निज व्यवहार ।
रामचन्द्र तौहु न घृणा, तनकहु नाहि विचार ॥१३॥
पर सुखके साधन वनैं, निज हित देहिं विसारि ।
रामचन्द्र चित खेद अति, इनको ओर निहारि ॥१४॥

चेतावनी

बावरे व्यर्थहि समय गमायो, जातैं, जन्म जन्म पछतायो ॥ टेर
बालपनो क्रीडा मैं खोयो संत संग नहिं पायो ।
तरुण अवस्था फसि विषयादिक नहिं विचार उपजायो ॥ १ ॥ बा०
वृद्धपने हित रखि परमारथ अपनो चित समझायो ।
ज्यौं जागीर आयुको पट्टा सन्मुख वैठि लिखायो ॥ २ ॥ बा०
जरजर तन कफ वात सतायो शब्दादिक नहिं भायो ।
ऐसो समय वृद्धता मूरख निज हित लागि उपायो ॥ ३ ॥ बा०
शिथल देह जब अंगन चालै तब यह मंत्र सुनायो ।
क्रिया कर्म करि सुत निस्तारहिं हमतैं नहिं वनिआयो ॥ ४ ॥ बा०
हाथ पराये निज स्वारथदे तू नहिं तनक लजायो ।
का सुत के औषध खाये शठ तेरो दरद नसायो ॥ ५ ॥ बा०
रामचन्द्र अब जागि वावरे अवसर गयो न पायो ।
ज्यौं खट्वाङ्ग लह्यो परमारथ सो अब समय बतायो ॥ ६ ॥ बा०
बावरे व्यर्थहि समय गमायो जातैं जन्म जन्म पछतायो ॥

चेतावनी

मूढ़ तैं जन्म वृथाही गमायो, तैं, नरतन लाभ न पायो ।
सब दिन फिरत स्वान सम घर घर वेश विचित्र बनायो ।
निद्रा मैं सब रैन गमाई कहा लाभ तैं पायो ॥ १ ॥ मूढ़तैं ० ॥
सुत धन दार जानि हितकारी तिनमैं चित्त लगायो ।
परहित बन्धन डारि गरे में निज स्वारथ बिसरायो ॥ २ ॥ मूढ़तैं० ॥
मृषा द्रव्य में धारि अहन्ता मनमैं अति हरषायो ।
जगत सार परमार्थ रूप तजि तू नहिं तनक लजायो ॥ ३ ॥मू० ॥
परम तत्त्व अद्वैतहु रूप लखि नहिं संसार नशायो ।
न यथार्थ तुम द्वैतहु जान्यो परहित स्वार्थ दुरायो ॥ ४ ॥ मू० ॥
परवो पशू जब क्रूर त्वरितही निकरन यत्न उपायो ।
मुक्ति द्वार नरतन तू लहि कै अधोपतन हित धायो ॥ ५ ॥ मू० ॥
आयू रत्न अमोल मूर्ख तैं भाड़े मांग गमायो ।
मृगजल सम जगरूप निरखि तू अन्त समय पछतायो ॥ ६ ॥ मू० ॥
निकरगयो जब नीर तालको पारि बांधवे धायो ।
रामचन्द्र अब होत कहा त्यौं अवसर गयो न पायो ॥ ७ ॥ मू० ॥

चेतावनी

मेरे उरु रामनाम बसोइ रहै माई ।
पावन परम सुलभ सुखदायक जेहिं निगमादि कह गाई ।
कोटिहु अधम पतितजन तारे गिनते होय कठिनाई ॥ १ ॥ मेरे०
परब्रह्म धार्यो रामतन जब वेदहु कीन चतुराई ।
धरि रामायण रूप वेद तब महिमा बहु प्रकार गाई ॥ २ ॥ "
सकल देव स्वारथवश जनतैं सेवा भक्ति निज चाहैं ।
अस देखि देहिं समान फल यह रीति दोउ मांई ॥ ३ ॥ "

कारण विना दीन हितकारक राम समान कोउ नाई ।
वनजाय मुनि तिय पद परसि पतिलोक हित पठाई ॥४॥ मेरे०॥
खग निशाचर भालुकपि जिन दीक्षाहु नहीं पाई ।
मख दानतप शौचादिसनते रहित समुदाई ॥५॥ मेरे०॥
घर जाय तिनके कार्य सारे कीनी आप सेवकाई ।
लोक विदित पावन यशकीने यह सब राम प्रभुताई ॥६॥ मेरे०॥
अधमजाति निषाद गुहतै भेटे आय ज्यों भाई ।
दीन वन्धु दयालु असकोउ नहि सुने जग मांई ॥७॥ मेरे०॥
अस राम रीति पिछानि दृढ़ जिन चित आई है नांई ।
ते रामचन्द्र अजान जन वहुभांति दुःख पांई ॥८॥ मेरे०॥

दोहा ।

मैं हंसा वा देश को, जहाँ न माया जाल ।
राग द्वैप भासै नहीं, पहुँच सकै नहीं काल ॥ १ ॥
जन्म मरणको भय नहीं, नहीं दुःख को लेश ।
परमानन्द स्वरूप मैं, आधि व्याधि नहिं क्लेश ॥ २ ॥
मन वाणी गोतीत अरु, व्यापक अलख मुकन्द ।
क्रिया देश अरु कालते, रहित सदा सुखकन्द ॥ ३ ॥
सबको मैं आधार हूँ, अरु निराधार निष्काम ।
स्वप्रकाश चैतन्यघन, रहित रूप गुण नाम ॥ ४ ॥
बंध मोक्ष परसै नहीं, अरु धर्मादिकतैं दूरि ।
अभग अनङ्ग अलिङ्ग चित, प्रत्यक जग भरपूर ॥ ५ ॥
शुद्ध बुद्ध केवल सदा, रहित ग्रहण अरु त्याग ।
कृत मायातैं दूर अज, नहिं अंशांश विभाग ॥ ६ ॥

अप्रतर्क्य स्वच्छन्दहूँ, निकट दूर मैं नाहिं ।
मोतैं उद्भव लय जगत, ज्यौं बुद्बुद जल मांहि ॥ ७ ॥
जगत जीव परमात्मा, मोतैं सिद्धी पांहिं ।
रामचन्द्र मम रूप सब, दृश्य भिन्न कछु नांहिं ॥ ८ ॥

लावणी

तै संसार सिन्धु तरवेको कवहु न कीन उपाय ।
तजि अमृत सतसंग विषय विच नित नूतन तू खाय ।
सो सुनि मन बहुरंगी समय खोय पछतावोगे ॥ १ ॥
सुखदायी परिवार जान तैं कीनो ममता नेह ।
परमानन्द स्वरूप भूलि तू खात फिरै जग खेह ।
सो सुख कबहु न पावै दृश्य सकल मृग वारि सम ॥ २ ॥
देह शास्त्र अरु लोकवासना यह बंधन अति भारो ।
कारागृह संसार दुःखतैं किहि विधि ह्वै निस्तारो ।
सो यह बन्दन तोरो फिर नहिं अवसर आय है ॥ ३ ॥
निकर जाय जब नीर तालको पारि बांधवे धावैं ।
नर तन अवसर खोय मूढ त्यौं शिर धुनि धुनि पछतावैरे ।
सो है दुःख भागी लख चौरासी योनि मै ॥ ४ ॥
रामचन्द्र आपहि करि बंधन मुक्ति अन्यतै चावै ।
ज्यौं तरु पकरि पुकारत मूरख है कोई हमैं छुटावै ।
सो बिन निज पुरुषारथ अन्य न बन्ध निवारि है ॥ ५ ॥

विलावल सोरठ

प्यारे सुत दारा परिवारा सब स्वार्थ मात्र संसारा जो ।
कोई नहिं हितू तुम्हारा इनमें मति फंठ बंधावो ॥
फिर समय न ऐसा पावेगा इनमें ॥ १ ॥

लखि देह कूर हरषाही मलमूत्र भरे इहिं मांही जी ।
जे यह क्षणिक तुच्छ दरसाहीं इन मैं० ॥ २ ॥
तिय कहै परम प्रिय वानी सोजानौ नरक निशानीजी ।
यह जानि सन्त विसरानी इन मैं० ॥ ३ ॥
सुत मिष्ट सुनावै वानी सो सारे दुःख की खानी जी ।
व्है पूरण सुख की हानी इनमैं० ॥ ४ ॥
धन जोरि चित्त हरषावै विछुरन मैं अति दुःख पावै जी ।
रो रो के समय वितावै इनमैं० ॥ ५ ॥
नरतन अति दुर्लभ गायो सो पुण्य पुंजतैं पायो जी ।
क्यौं व्यर्थहि धूरि मिलायो इनमैं० ॥ ६ ॥
तैं आपेकूं विसरायो तातैं सत जगत जनायो जी ।
करि ममता अति दुख पायो इनमैं० ॥ ७ ॥
कुल वरणाश्रम व्यवहारा सब थूल देह आधारा जी ।
है तव स्वरूप तैं न्यारा इनमैं० ॥ ८ ॥
कर्त्ता कर्मादिक सारा यह लिंग देहनै धारा जी ।
तू व्यापक शुद्ध अपारा इनमैं० ॥ ९ ॥
जब अपनो आप पिछानै सब दृश्य मृशा चित मानैजी ।
तब रामचन्द्र सुख जानै इनमै मति कंठ-बंधावो ।
फिर समय खोय पछतावोगे ॥ १० ॥

तेरो दुःख निवारण होय सुलभ अति मंत्र यहै ।
व्है कटिबद्ध करै पुरषारथ तन अभिमान दुरावै ॥
संसृति को बंधन है छेदन मुक्ती को द्वार खुलावै ॥ १ ॥

ममता दूर होय सबही ते नेहको पाशि पिलावै ।
आत्मभावना नौका चढ़िके भववारधि तरिजावै ॥ २ ॥
स्वर्गादिक के भोग निमित तू यत्न अनेक उपावै ।
हां नां मैं तू क्यों न विसारत आप ईश पद पावै ॥ ३ ॥
ऊरध पाय अधोशिर झूलत व्यर्थहि देह सुखावै ।
रामचन्द्र वल्मीक विगारे कवहून उरग नशावै ॥ ४ ॥

तेरो कैसैं छुटैगो संसार मुक्तिको कोई यत्न नहींरे ।
सतसंगति तो पलकन भावै नित कुसंग हित धावै ।
आत्म बुद्धि धर देह जगतमैं ममता करि हरपावै ॥ १ ॥
निशि दिन होय काममैं लंपट तिय नेह वढावै ।
भवसागर मैं भँवर वडो यह परतहि गोता खावै ॥ २ ॥
महा वाक्यको मरम नजानै व्यर्थहि गाल वजावै ।
शिलोदर मैं होय परायण याहींकू धर्म वतावैं ॥ ३ ॥
तुच्छ असार जगत करि निश्चय आत्मा चेतन रूप ।
करहु सकल व्यवहार जगत के भाख्यो ज्ञान अनूप ॥ ४ ॥
रामचन्द्र यह सारे वेद जव मृग जल सम जग भावै ।
आत्मा सतचित रूप पिछाने त्वरित वन्ध कटि जावै ॥
तेरो कैसैं छुटैगो संसार मुक्ती को कोई यत्न नहीं ॥ ५ ॥

सो मैं जानि लियो जगसार प्रियतम पद प्रीति अपार ।
पवि परमातम रूप जगत मैं पति है जग आधार ।
दृश्य सुखद लखि ह्वै पति निर्मुख कवहुन व्है निस्तार ॥
सौ मैं जानि लियो जग सार ॥ १ ॥

त्यागि मुख्य जे गौणहिं सेवत हृदय न करहिं विचार ।
सुधासिन्धु तजि खोजहिं डाबरि प्यासे मरहिं अपार ॥
सो मैं जानि लियो जग सार ॥ २ ॥
चित्र लिखे ज्यौं चन्द्र दिवाकर करहिं न जग उजियार ।
दृष्ट नष्ट चल रूप दृश्य त्यौं निश्चय तुच्छ असार ॥
सो मैं जानि लियो जग सार ॥ ३ ॥
सतचित रूप अखिल सुखदायक परमानन्द उदार ।
अमर सुहागनि ह्वै प्रियतम लहि खुलत मुक्ति को द्वार ॥
सो मैं जान लियो जग सार ॥ ४ ॥
रामचन्द्र मृगजल सम जग लखि धूरि देहिं जे डार ।
गोपद होत त्वरित भवसागर विन प्रयास ह्वै पार ॥
सो मैं जानि लियो जगसार ॥ ५ ॥

चेतावनी

मूढ़ क्यौं देह देखि हरषाय रंग यह माटी मैं मिलजाय ।
ईशहुतैं राखत जिहिं प्यारो भूषण वसन सजाय ।
जैसे मोती धसो ओसको पवन लगे ढरि जाय मूढ ॥ १ ॥
भोजनादि जिहिं साजि यथेच्छित सेवा करत बनाय ।
ज्यौं बारूकी भीति बनाई बूंद परे गिरिजाय मूढ ॥ २ ॥
सुत दारा धन धाम भोग मैं लंपट भयो भुलाय ।
जैसे पच्ची कीन बसेरा भोर भये उडिजाय मूढ ॥ ३ ॥
सुत धन धाम संग नहिं चालहिं ठाठ पर्‍यो रह जाय ।
रामचन्द्र अब चेत बावरे जन्म स्वप्न सम जाय ॥
मूढ क्यौं देह देखि हरषाय रंग यह माटी मैं मिलजाय ॥ ४ ॥

चेतावनी

मैं देख लई जग रीति विसारी तब देहादिक प्रीति ।
मृग जल इन्द्र धनुष सम अद्भुत जगत रूप दरसायो ।
दृष्ट नष्ट चल रूप जानि मैं चितते ताहि दुरायो ॥ १ ॥
सुतदारा धनधाम सुखद लखि मनमैं अति हरषायो ।
भये स्वप्न संपति सम सारे तिनहीं रुदन करायो ॥ २ ॥
जे जे मैं हितकारी जाने तिनहीं दुःख दिखायो ।
कारण दुःख अहन्ता जानी ताहि त्यागि सुख पायो ॥ ३ ॥
रामचन्द्र देहादि त्यागतैं सुखन होय जग मांई ।
दुःख हेतु यक त्यागि अहन्ता शेष सुखहि रहजाई ॥
मैं देखलई जगरीति विसारो तब देहादिक प्रीति ॥ ४ ॥

किये सकल व्यवहार जगत के सुख कबहूँ नहिं पायो ।
मात पिता भ्राता पति बान्धव स्वार्थ मात्र सब भायो ॥
जिन जिन मैं मैं प्रीति बढाई तिनहीं दुःख दिखायो ॥
नर तन दुर्लभ पाप पुण्यतैं व्यर्थहि जन्म गमायो ।
सो कोई यत्न बतावो कवन भांति सुख प्राप्त है ॥ १ ॥
एक बात निश्चय हम जानो है कुटम्ब दुःखदायी ।
जबतैं मैं ममता की यामैं समता कबहुन आई ॥
रोय रोय मैं आयु बिताई मिले दुःख समुदाई ।
प्रीति करूं मैं निज स्वरूपतैं यह निश्चय चित भाई ।
सो परमात्म कहाँ है यत्न कहा है प्रियतम मेल को ॥ २ ॥

जबतैं यह प्रियतम चित भायो छुटे सकल व्यवहार ।
मात पिता पति बांधव कुलकू दई त्वरित धिक्कार ॥
सब जन तजि निज रूप सुहाया मुख्य जगतमैं सार ।
लोक लाज कुल कानि रतिपै धूरि दीन मैं डार ॥
अब मैं भई बावरी प्रियतम प्रेम अपार मैं ॥ ३ ॥
स्तुति निन्दा मैं कछु नहिं मानूं स्वर्ग नर्क भय नाहीं ।
हानि लाभ अरु धर्म कर्मकू परौ कुवे के माहीं ॥
वरणाश्रम जरिजाहु अग्निमैं कवन कार्य यह आहीं ।
जो कोउ बात करैं प्रियतम की सो श्रुति रूप जनौं जी ॥
सो परमातम मिलन ही जानि लियो जगसार है ॥ ४ ॥
ह्वै त्यौहार जगत मन भावन हमकूं नाहिं सुहावैं ।
केसर अरु चंदन पुष्पादिक उलटे देह जरावैं ॥
वसनादिक भोजन अरु शय्या तनकूं ताप लगावैं ।
जब प्रियतम को रूप निहारूँ उलटि प्राण तन आवैं ॥
सो प्राणन तैं प्रियतम विन देखे बेहाल हूँ ॥ ५ ॥
सनै सनै अभ्यास योगतैं अब आशक्ती आई ।
खान पान भूषण वसनादिक तनकी सुधि बिसराई ॥
पूर्व समय के हितु बन्धुजन भासे सब दुखदाई ।
विन प्रियतम के दरस स्वर्गहू नरक रूप दरसाई ॥
सो कोउ होइ सहायक पन्थ बतावौ प्रियतम वासकौ ॥ ६ ॥
सुनि अस वचन सखी यौं बोली सुनि प्यारी मेरी बात ।
जिन जिन निजतैं प्रीति लगाई तजे तात सुत मात ॥
देह शास्त्र अरु लोक वासनां तुच्छ तिन्हैं दरसात ।
निन्दा अरु अपमान जगतमैं सहैं दिवस अरु रात ॥

यों पर प्रीति बुरी है चित्त लगायो अपनो लोकमैं ॥ ७ ॥
सुनौ सखी यह बात हमारी मैं अस कीन विचार ।
नाम रूप वरणाश्रम सारे स्थूल देह व्यवहार ॥
कर्त्तादिक ये धर्म लिङ्ग के मैं सब दिये विसार ।
यद्यपि परकी प्रीति कठिन अरु है खांडे की धार ॥
तोहु मैं नाहिं विसारूं केतो है जग मैं जीवनो ॥ ८ ॥
ले विचारकूं संग बुद्धि जब परखो जन हित धाई ।
नाम रूपतैं परै त्वरित ही तत्व वस्तुकूं पाई ॥
रामचन्द्र तृण ओले गिरि ज्यों निकटहि दीन दिखाई ।
सद्‌वन अरु निष्काम रूपलहि परमानन्द समाई ॥
नर अस यत्न करत ही परमानन्द स्वरूप हैं ॥ ९ ॥

तू ही खेल खिलाड़ी अद्भुत तूही लखैं तमासा है ।
है आधार सकल नाटक को तुहि नट करत विलासा है ॥ १ ॥
नटनी अजा अनिर्वचनीया त्रिगुणमयी सो वाला है ।
तव आश्रय लहि सुत उपजाये पंचभूतादिक काला है ॥ २ ॥
तिन मिलि रच्यो थियेटर अद्भुत परम विचित्र विशाला है ।
विन थल थूणी साज सजायो रवि शशि जोर मसाला है ॥ ३ ॥
सो माया तो तैं नहिं न्यारी ज्यौं तिल तेल विचारा है ।
काष्ट अग्निवत मैं सुगंध त्यौं तो मैं सकल पसारा है ॥ ४ ॥
सर्वातीत रहत सब मांही यथा मेघ नभ न्यारा है ।
व्है आश्रय माया को तू ही रचत सकल संसारा है ॥ ५ ॥
तू ब्रह्मा व्है जग उपजावत रवि व्है करत प्रकाशा है ।
विष्णुरूप पालत संसारहिं तुहि शिव करत विनाशा है ॥ ६ ॥

राजा प्रजा तूहि ऋषि पंडित भगत अनेकन भाषा है ।
धर्म सनातन को व्है ज्ञाता कहत विविधि इतिहासा है ॥ ७ ॥
कबहु राम रावण बनिआयो कहि बलि वावन भावा है ।
शुंभ निशुंभ कवहु मधुकैटभ नरहरि रूप जनावा है ॥ ८ ॥
तू ही धर्मी कर्मी ध्यानी मौनी रूप बनावा है ।
कपिल हंस हरि व्यास रूप धर योग ज्ञान प्रगटावा है ॥ ९ ॥
माता पिता तूहि कुल बान्धव पुत्र रूप तैं धारा है ।
बाल तरुण और वृद्ध होय जग करत सकल व्यवहारा है ॥१०॥
निगमागम तोकूं नित गावहिं तदपि न पायो पारा है ।
ग्रहण त्यागतैं रहित अखंडित सकल द्रव्य को सारा है ॥११॥
नाचत गात बजावत तूही तंत्री वीणा भासा है ।
तूही ऐक्टर होय विदूषक करत विविध उपहासा है ॥१२॥
रोवत हसत करत सब लीला परदे मांहि निवासा है ।
द्वैतरूप व्है नाटक रचित रहित सकल भ्रम वासा है ॥१३॥
वक्ता श्रोता होय सभापति तूही करत विचारा है ।
शब्द अर्थ निगमादि सार तू कथन श्रवण तैं न्यारा है ॥१४॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति हीन तू कृतमाया तैं दूरा है ।
निराधार अज पूर्ण निराश्रय व्यापक जग भरपूरा है ॥१५॥
मंदिर महल अटारी तूहो तैं निवास तहाँ कीना है ।
वरणाश्रम स्वेतादि हीन अरु तूहि सदा रंगभीना है ॥१६॥
कर्त्ता क्रिया कर्म कारण तू आदि अन्त तैं हीना है ।
मनवाणी गोऽतीत निरंजन निकट दूर नहिं चीना है ॥१७॥
विश्व चराचर तू तारागण तडित मेघजल धारा है ।
धर्मादिक स्वर्गादि विवर्जित तूहि प्राणतैं प्यारा है ॥१८॥

जबलौं भेद रहै मैं तूको तब लगि सब संसारा है ।
भेद हटै दुख मिटै सकल तब कोउ न तोतैं न्यारा है ॥१९॥
रहित द्वैत अद्वैत कल्पना नाम न रूप सुहावा है ।
तू निर्लेप असंग निरंतर तुहि वहिरन्तर भावा है ॥२०॥
जगत जीव अरु ईश ब्रह्म सब तो तैं सिद्धी पावा है ।
रामचन्द्र सच्चिदानन्द तू तो बिन कछु न जनावा है ॥२१॥
दुख लहै बँध्यो भ्रम पासी समझै तो बात जरासी ।
सुत वनिता धनधाम देह सब स्वप्न संपदा भासी ॥
जिन हित कँठ बँधाय दुःख सह कोउ संग नहिं जासी ।

तू भोगै लख चौरासी समझै तो बात जरासी ॥ १ ॥
भौतिक द्रव्य पदारथ सारे ज्यों दामन चपलासी ।
इन्द्र धनुप अरु मरु मरीच समदृष्ट नष्ट दुख रासी ।
जन व्है भ्रम तैं अभिलापी समझै तो बात जरासी ॥ २ ॥
वेद शास्त्र को ज्ञाता व्हैकै पंडित नाम धरासी ।
शिश्नोदर मैं होय परायण नरतन व्यर्थ लजासी ॥
व्है उभय लोक मैं हांसी समझै तो बात जरासी ॥ ३ ॥
तू मृत्यू के मुख मैं बसहै तौहु भोगही चासी ।
ज्यौं अहि मुख परि दर्दुर मूरख पेट भरन अभिलापी ॥
क्यौं सारी बुद्धि विनासी समझै तो बात जरासी ॥ ४ ।
देवेच्छित नरतन अति दुर्लभ निकट हाथ नहिं आसी ।
भाड़ैं मांग अमोलक आयू खोय विविध पछितासी ॥
फिर रोये कछु नहिं पासी समझै तो बात जरासी ॥ ५ ॥

महा वाक्य को सार न जानै व्यर्थहिं गाल बजासी ।
बिन सतसंग स्वरूप पिछाने लहै न पद अविनासी ॥
नहिं छुटै वासना पासी समझै तो बात जरासी ॥ ६ ॥
दंड कमंडल मालाधारत पढ़कर आयो काशी ।
लहि विचार निज रूप न जान्यो व्यर्थ बन्यो सन्यासी ॥
सो मिलै न सुख की रासी समझै तो बात जरासी ॥ ७ ॥
आतम सत चित अज अनादि है जगत पुष्प आकाशी ।
अस दृढ़ लखि व्यवहार करहु सब व्है पूरण प्रभुतासी ॥
तब मिलै शान्ति समतासी समझै तो बात जरासी ॥ ८ ॥
सकल वेद को सार एक यह परमातम अविनाशी ।
सो अपनो स्वरूप सुखसागर है जग तुच्छ विनाशी ॥
जानै व्है स्वयं प्रकाशी समझै तो बात जरासी ॥ ९ ॥
जगत जीव अरु ईश ब्रह्म सब जातैं होय प्रकासी ।
रामचन्द्र सो मम स्वरूप है जानि मुक्ति व्है जासी ॥
मैं चिदानन्द अविनाशी समझै तो बात जरासी ॥१०॥

प्यारे कहां गयो विसराई तेरो विरह परम दुखदाई ॥ ॥
शब्दादिक भोजन अरुशय्या निद्रा नीक न भाई ।
प्राणनतै प्रियपति विसरायो सो दुख सह्यो न जाई ॥१॥ प्यारे०॥
परम सुन्दरी नारि बुद्धि नै अंग विभूति रमाई ।
संप्रदाय मत पन्थ लखे बहु तदपि न दीन दिखाई ॥२॥ प्यारे०॥
पुरीधाम तीरथ गिरि कानन सिन्धु पारलौं धाई ।
देख करबला मक्का मदीना गगन पन्थ सुधि आई ॥३॥ प्यारे०॥

तल उपरि लखि लोक चतुर्दश तब आशा बिसराई ।
सब ब्रह्मांड ढूँढि थकिहारी तब गृह श्रुति लगाई ॥४॥ प्यारे०॥
लह विचार खर खोजन लागी निकटहि दीन दिखाई ।
रामचन्द कृष्ण ओले पर्वत मिलि आतम हरपाई ॥
प्यारे कहां गयो बिसराई तेरो विरह परम दुखदाई ॥५॥ प्यारे०॥

मैं तो नित सत्यहूँ मेरो अलख निरंजन रूप ॥ मैं तो० ॥ टेर ॥
जातैं देखै सुनैरु सूंघे लीला करत अनूप ।
बोलै धावै लेत स्वादु कू सो प्रज्ञान स्वरूप ॥ १ ॥ मैं तो० ॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति जनावत सुख दुःखादि अनूप ।
हृदय कमल रवि रूप प्रकासूं स्वयं ज्योति सुखरूप ॥ २ ॥ मैं तो० ॥
मैं हीं ब्रह्मा विष्णु सदाशिव मैं देवी मैं देव ।
स्वामी अरु सेवक हूँ मैं ही करत दासव्है सेव ॥ ३ ॥ मैं तो० ॥
मैं ही इन्द्रवरुण यम धनपति मैंहि रंक अति दीन ।
रवि शशि अरु तारागण मैं ही आदि अंततैं हीन ॥ ४ ॥ मैं तो० ॥
भूनभ सिन्धु चराचर मैं ही मैं हि तडित घनघोर ।
बहिरन्तर अध ऊर्ध्व निरन्तर मो बिन कोउन ओर ॥५॥ मैं तो०॥
धर्मादिक दुःखादि रहित जिहि जन्म मृत्यु नहीं होय ।
शुद्ध बुद्ध केवल अरु चिद्घन प्रत्यक पर मैं सोय ॥६॥ मैं तो०॥
निराधार आधार सर्वको जिहि गावहिं श्रुति सन्त ।
अगम अनंग अलिंग अनामय सद्घन अकथ अनन्त ॥७॥ मैं तो०॥
आश्रय रहित सर्वको आश्रय निकट दूर नहिं जोय ।
मनवाणी गोऽतीत अखंडित ब्रह्मसनातन सोय ॥ ८ ॥ मैं तो०॥

जागृत स्वप्न सुषुप्ति हीन मैं कृत माया ते दूर ।
अप्रतर्क्य से स्वच्छ सर्वदा व्यापक जग भरपूर ॥ ९ ॥ मैं तो० ॥
परमानन्द अचल सम अद्वय रहित ग्रहण अरु त्याग ।
एक विरंश अनीह अलौकिक नाम न रूप विभाग ॥१०॥मैं तो०॥
सत रज तम महदादिकतैं पर लखैं न युक्ति प्रमाण ।
देखूं सुनूं गंध नित सूंघूं विना श्रोत्र दृग घ्राण ॥ ११ ॥ मैं तो०॥
जगत जीव अरु ईश ब्रह्म को जातैं सिद्धी होय ।
रामचन्द्र सो मम स्वरूप है प्रिय प्राणनतैं सोय ॥ १२ ॥मैं तो०॥
मैंतो नित्य सत्य हूँ मेरो अलख निरंजन रूप ।

मुक्ती मैं कवन विधि पाऊं मेरी छुटत वासना नाहिं ।
अवगुण प्रथम कियो मैं भारी निज स्वरूप विसरायो ।
जातैं सत्य लख्यो संसारहिं ममता करि दुरपायो ॥ १ ॥क०॥
द्वितिय भयो मैं तन अभिमानी नेह पाशि लिपटायो ।
ताहितैं परिवार सुखद लखि विछुरत रुदन करायो ॥ २ ॥क०॥
देह शास्त्र अरु लोक वासना तीन शृंखला पाई ।
कारागृह जग मांहिपरी पद कर अरु गलके मांई ॥ ३ ॥क०॥
सुत धन दार गेह में फसिकै दृढ ममता मैं धारी ।
गल आशक्ति रज्जु कर वन्धन अपनी सुरति विसारी ॥ ४ ॥क०॥
संतसंग मैं नीक न जान्यो उठि कुसंग हित धाऊं ।
आतम अमृत त्यागि विषय विष नित नूतन मैं खाऊं ॥ ५ ॥क०॥
देवेच्छित नरतन अलभ्य लहि परहित स्वार्थ दुराऊं ।
अवसर खोय व्यर्थ पछतावन को उन सहायक पाऊं ॥ ६ ॥क०॥

सुर तरु काटि निम्बफल बोयो फिर मीठे फल चाऊं ।
तजि परमात्म सुखद जग जान्यो ताहीत पछताऊं ॥ ७ ॥क०॥
स्वयं ज्योति चिद्घन अनन्त अज क़वन भांति मैं पाऊं ।
रामचन्द्र तजि दृश्य अहंत्ता वारंवार जगाऊं ॥ ८ ॥क०॥

पिया प्यारी पति पद प्रीति विचारो जातैं व्है संसृति निस्तारो ।
अहंकारकी सुता नवेली बुद्धी नाम तुमारो ।
अमित जन्मतैं रही हौ कुमारी अब पातिव्रतधारो ॥ १ ॥
यद्यपि पिता लगत है जगमैं सबहिं प्राण सम प्यारो ।
तदपिप्राणप्रिय बिन नहिं जानहिं चतुर नारि निरतारो ॥ २ ॥
सुत पितु मात भ्रात क्षणभंगुर इनमैं चित्त न लगावो ।
हैं वियोग मैं सब दुखदायक मृगजल सम बिसरावो ॥ ३ ॥
भौतिक वस्तु तदपि मितदाता हितकर पितु न लखावो ।
पति सर्वस्व अमित सुखदाता कहा अधिक अत्र चावो ॥ ४ ॥
अलख निरंजन शुद्ध ब्रह्म अज अविनाशी पति पावो ।
अमर सुहागनि है सुखभागनि परमधाम वसिजावो ॥ ५ ॥
निरहन्ता उपलेप मलिनता भेद वाद विसरावो ।
सुधासिन्धु महावाक्य वोध मैं मज्जन प्रथम उपावो ॥ ६ ॥
पद मुमुक्षता महदी नूपर शान्ती शील सजावो ।
शम दमादि कटकादि धारि तुम शोभा तन अधिकावो ॥ ७ ॥
लहि असंगता वसन कंचुकी निष्किंचनता धारो ।
दृश्य अहन्ता जीर्णवसन तुम गेह पिता मैं डारो ॥ ८ ॥
परम शुभग आभरण मनोहर निर्वासनता धारो ।
अंगुरिन छल्ले छाप छबीली दृढ वैराग सँवारो ॥ ९ ॥

प्रियतम योग निमित सखि प्यारी समता अंजन सारो ।
मुख तांबूल विवेक धारि तुम सोहं शब्द उचारो ॥१०॥
आत्मभावना चूड़ामणि शुभ अपने शीस सँवारो ।
श्रुती अनर्गल सुगमपन्थमैं शनैः शनैः पदधारो ॥११॥
करि नखशिख शृङ्गार अलौकिक पति दर्शन हित धावो ।
प्राणनतैं प्रियतम पति आतम तव आपहि मैं पावो ॥१२॥
जीवन प्राण योगहित सुन्दरि सँग विचार लैजावो ।
विरह दुःखकी अकथ कहानी अपनी सव प्रगटावो ॥१३॥
इहिं विधि योग होय जव पतितैं संसृति कवहु न पावो ।
रामचन्द्र सुखरूप रूपलहि सुख स्वरूप ह्वै जावो ॥१४॥

बन्धन लह्यो अनात्म मैं पाय-योग अज्ञान ।
ताहीतैं संसृति भई सुनिले विभू सुजान ।
सो जगदीश तोकूं पंचेन्द्रिय विरमायो नाथ ॥ १ ॥
माया तेरी शक्ति है उपजावत संसार ।
स्वाश्रम स्वविपथ रीतितैं तू सवको आधार ।
सो परमात्मा तोकूं आच्छादन करलीनो मेरे नाथ ॥ २ ॥
आत्म अनात्म विवेक की अग्नी वोध जराय ।
कार्य सकल अज्ञानकूं देहु समूल नशाय ।
सो परमेश तोकूं अन्तः करण भ्रमायो मेरे नाथ ॥ ३ ॥
निर्विकार निर्लेपतू निष्किंचन निष्काम ।
माया के संयोगते लहे रूप गुण नाम ।
सो सर्वेश तोकूं मोह मलिन करदीनों मेरे नाथ ॥ ४ ॥

आदि अन्ततैं हीनतू स्वयं ज्योति सुखधाम ।
रामचन्द्र सत तत्व अज रहित रूप गुण नाम ।
सो जग सार तोकूं नामरूप कर गायो मेरे नाथ ॥ ५ ॥

करि जोगिन को वेष बुद्धिनै कीनो यत्न अपारा,
रे नहीं मिला हमारा प्यारा ।
माता पिता भ्राता कुल बान्धव ये नहीं हितू हमारा ।
इनमैं प्रीति करन दुखदायी मृगजल सम संसारा ॥ १ ॥रे०॥
पुरीधाम तीरथ वन देखे ढूंढि फिरी जगसारा ।
देख करबला मका मदीना सागर नीर निहारा ॥ २ ॥रे०॥
सम्प्रदाय मतपन्थ सबहिमैं पार्थिवादि व्यवहारा ।
सतचितको कहिं दरस न पायो जो त्रिलोक आधारा ॥ ३ ॥रे०॥
तल ऊपरि लखि लोक चतुर्दश तब यह कीन विचारा ।
दूर दूर मैं फिरी भटकती तेरेहि जग उजियारा ॥ ४ ॥रे०॥
तृण ओले गिरिसम दरसायो सो निजरूप उचारा ।
रामचन्द्र लहि चितघन आतम आनन्द भयो अपारा ॥ ५ ॥रे०॥
रे नहीं मिला हमारा प्यारा ।

पद

वाट घणीं दिनं थोरारे वटेउ ।
बहुत जन्मतैं भूलि स्वरूपहि बन्यो अस्थिमय देहारे ।
तूं निर्लेम शुद्ध अज आतम नित सब सुखको गेहारे ॥ १ ॥वाट०॥

सुत धन धाम दार परिवारहि सुखद जानि हित जोरारे ।
होय स्वप्न संपति सम सारे रो रो करे ढँढोरारे ॥२॥बाट०॥
ज्यौं तरु डार लहै खग मारग कीनों तहां बसेरारे ।
त्यौं संयोग देह देहीको उडिहै होत सवेरारे ॥३॥बाट०॥
रामचन्द्र अब जगहु बावरे निकट करहु तुव डेरारे ।
जानि स्वरूप लहहु परमानन्द ज्यौं दुःख होंय नवेरारे ॥४॥बाट०॥

जग में अस लोग अपार देखे भलो चाहने वाले ॥
बालपनो क्रीडा में खोवैं तरुण समय विषयादिक जोवैं ।
सतसंगति कूं जानि विगोवैं हैं उलटे चलने वाले ॥ १ ॥ जग० ॥
दंभ कपट छल चित मैं राखैं मृषा कूट कटु निशिदिन भाखैं ।
पर अकाज श्रमकरि रसचाखैं हैं मिथ्या पूजन वाले ॥ २ ॥ जग० ॥
तिलक छाप माला गल धारै हाथ गोमुखी मांहि पसारै ।
दया तोपकूं नांहि विचारै अपनो काज बिगारन वाले ॥ ३ ॥ जग० ॥
अपनो आपहि बंठ दँधावैं कर ममता नाना दुख पावैं ।
अन्य देवतैं मुक्ती चावैं व्यर्थहि श्रम करने वाले ॥ ४ ॥ जग० ॥
कर्मभोग निज दुखहि न मानैं ईश्वर को कृत ताहि बखानैं ।
ज्यौं आगेकूं कृत्य न जानैं हैं दुखी होवने वाले ॥ ५ ॥ जग० ॥

पद

कब अवसर ऐसा होय मिटै जब तू तू मैं मैं सारी ।
राग द्वेष देहाभिमान ये जावैं हमहिं विसारी ।
छांडि अस सुन्दर समय अनारी व्यर्थहि क्यों बन्यौं भिखारी ॥ १ ॥

सेज शिला निज मुझको तकिया गंगातट है प्यारी ।
आव जाव हां नां मैं तू ये लगहिं चित्तकूं खारी ॥
अस उत्तम सुखहिं बिसारो क्यों दुःख-पोट शिर धारी ॥ २ ॥
परै न हमरो काम काहुते कोउ न हम ढिग आवै ।
साम्राज्यादिक भोग भयानक दुःख रूप चल भावै ॥
अब स्वस्थ चित्त है जावै ज्यों समता तेरे आवै ॥ ३ ॥
देह शास्त्र और लोक वासना हमहिं दुखद दरसावै ।
पुण्य पाप सुख दुःख मानहू हमहि छाडि चल जावै ॥
अस हुये शान्ति चित आवै जो परमानन्द मिलावै ॥ ४ ॥
मैं सत्य रूप सुखधाम वेद श्रुति नेति नेति कहि गायो ।
मैं नित्य मुक्त निष्काम वेदहू पार न जाको पायो ॥
जब संग अविद्या पायो सम्राट दास है धायो ॥ ५ ॥
मैं पाय अविद्या संग मोह वश अपनो रूप भुलायो ।
है अस्थि मांस मय देहदुखी अरु मलिन नीच बनिधायो ॥
स्वान सम द्वार द्वार भटकायो तृष्णा यह रोग लगायो ॥ ६ ॥
मैं भाग त्याग लहि योग त्वरितही अपने आपहिं पायो ।
तव भयो अविद्या अन्त भ्रान्ति भ्रम आप समूल नशायो ॥
लखि रामचन्द्र हर्षायो यों जीव ब्रह्म दरसायो ॥ ७ ॥

पद

जगाय हारीरे पियान पापी जागैरे जगाय हारी रे ॥टेर॥
मोह निशामें सो रह्यो पाय अविद्या संग ।
सत्यभावना दृश्य को गाढो राच्यो रंग ॥ १ ॥ सो जगाय०

मैं पतिवृता नारि हूँ विद्या मेरो नाम ।
जिनकी मोतें प्रीति ह्वै लहैं पूर्ण विश्राम ॥ २ ॥ सो जगाय०
छुटा अहन्ता देहतैं मिटा अविद्या जाल ।
शान्ती छत्र लगाय शिर करहुं विश्व भूपाल ॥ ३ ॥ सो जगाय०
सत चित आनन्द रूप ह्वै स्वयं ज्योति सुखधाम ।
रामचन्द्र अस पद लहे पूरण ह्वैं सब काम ॥ ४ ॥ सो जगाय०

पद

सो समझोरे भाई सकल वेद को सार है ।
कष्ट वड़ेकूं पाय कहैं जन तिनकी वात सुनाऊं ॥ १ ॥
निकरै प्राण देह छुटि जावै तव मैं सुखकूं पाऊं ॥ १ ॥
सो समझोरे भाई सकल, वेद को सार है ।
निकरै प्राण देह छुटिजावै तव (मैं) कित रहजावै ।
सुख इच्छा जिहिं धारि चित्तमैं प्राणहु तक विसरावै ॥ २ ॥
सो समझोरे भाई सकल वेदको सार है ॥२॥
याही तैं यह जानि परत है (मैं) प्राणनतैं प्यारा ।
परमानन्द परम सुखसागर वेदहु ताहि उचारा ॥ ३ ॥
सो समझोरे भाई सकल वेदको सार है ॥३॥
प्राण देहकी क्षुद्र वात है महा प्रलय जव होय ।
सव अदृश्य होजावैं तवहू शेष रहत हैं सोय ॥ ४ ॥
सो समझोरे भाई सकल वेद को सार है ॥४॥
ज्ञान रूप जो उरु उरु वासी ज्ञान जनावत सोई ।
जीवरूप अज्ञान दशा यह (मैं) दुखमय कह कोई ॥ ५ ॥

सो समझोरे भाई सकल वेदको सार है ॥५॥
प्राण गये पर रहै शेष (मैं) यहै वेदको सार ।
सो सबका स्वरूप सुखसागर सकल जगत आधार ॥ ६ ॥
सो समझोरे भाई सकल वेदको सार है ॥६॥
मरै जरै भींगै सूखै नहिं नित्य अचल है सोय ।
ताहीकूं (मैं) कहत वेद श्रुति अविनाशी सोय ॥ ७ ॥
सो समझोरे भाई सकल वेद को सार है ॥७।
जड शरीर (मैं) कहै अज्ञजन मनमें नांहि विचार ।
जन्म मरण ये धर्म देहके सो सतचित मैं धारै ॥ ८ ॥
सो समझोरे भाई सकल वेदको सार है ॥८॥
करि प्रयत्न जे नर विज्ञानी करलै भूल सुधार ।
अस विचार दृढ होय त्वरितही वेडा होवै पार ॥ ९ ॥
सो समझोरे भाई सकल वेदको सार है ॥९॥
उदय सुकृत बहु जन्म होय जिन तिनहीतैं असहोय ।
रामचन्द्र ते नित्यमुक्त अरु चिद्घन व्यापक सोय ॥१०॥
सो समझोरे भाई सकल वेदको सारहै ॥१०॥

है (मैं) का यही विचारा लहिव्है भवसागर पारा ।
जबलौं तू (मैं) को नहिं जानै अपने आपहिं नहिं पिछानै ।
कबहु न व्है निस्तारा ॥१॥ है मैं का यही विचारा० ॥ १ ॥
गर्भवास में फिर फिर आवै भांति अनेक दुःख भय पावै ।
नहिं व्है भवसागर पारा ।२॥ है मैं का यही विचारा ॥ २ ॥
तेरा (मैं) है सुखका सागर जो त्रिभुवनको करै उजागर ।
है सकल विश्व आधारा ॥३॥ है मैं का यही विचारा० ॥ ३ ॥

अलख निरंजन अज अविनासी सतचित आनंद घटघटवासी ।
है कथन श्रवणतैं न्यारा ॥४॥ है मैं का यही विचारा० ॥ ४ ॥
नेति नेति कहि वेद वतावै शेप शारदा पार न पावै ।
विन कहे न जग व्यवहारा ॥५॥ है मैं का यही विचारा० ॥ ५ ॥
आदि अंत जाको नहिं कोई नभ सम व्यापक है जग सोई ।
है परमानन्द अपारा ॥६॥ है मैं का यही विचारा० ॥ ६ ॥
निकट दूरि भी है मेंहीं जोई आवत जात कहीं नहिं सोई ।
है प्राणवतें प्यारा ॥६॥ है मैं का यही विचारा० ॥ ७ ॥
रामचन्द्र जो इहिविधि जाने दृढ विचार अपने चित आवै ।
सो जीवनन्मुक्त उदारा है मैं यही विचारा लहि व्है भवसागरपारा ॥८॥

पद

सो यह भूल सुधारो भूल यही है मूल की ।
येक भूलतैं होय जगत में, उलट पलट सव बात ।
ज्यौं जीवितकूं मृतक कहैं अरु, मृतकहिं जीवित गात ॥ १ ॥
चर्म लयें अशुचि देह तू, अपना (मैं) मति जान ।
ज्यौं रथ रथी नाव मल्लाह हू, भिन्न भिन्न व्है भान ॥ २ ॥
देहेन्द्रिय मन बुद्धि प्राण सह, यही कह्यो रथ रूप ।
जो याको संचालन करि है, सो है रथी अनूप ॥ ३ ॥
तेरी याकी सदृश एकता, कवहु न होवै तात ।
तू अविनाशी वस्तु विदित यह; नाशमान विख्यात ॥ ४ ॥
यह दुःख का आगार निरन्तर, तू सव सुख को धाम ।
विविधि वासना युक्त यही है, तू पूरण निष्काम ॥ ५ ॥

जन्म मरण क्लेशादि सहित यह, अज अनन्त तू सत्य ।
आधि व्याधि को आकर है यह, निर्विकार तू नित्य ॥ ६ ॥
क्षणभंगुर अरु मरु मरीच सम, अस्थि मांस मय देह ।
शोक मोह संताप दुःख मय, क्षुधा तृषा को गेह ॥ ७ ॥
नाम रूप स्वेतादि विवर्जित, अलख निरंजन जोय ।
है आश्रय सबविश्वएक यह, तेरो (मैं) है सोय ॥ ८ ॥
तू नभ सम निर्लेप अलौकिक, यह मायाको रूप ।
यह याचक मांगत सदैव तू अखिल विश्वपति भूप ॥ ९ ॥
रामचन्द्र यह भूल समझ कर, जे जन करहिं सुधार ।
तिनको जीवनसफल होय अरु, विन प्रयास भवपार ॥१०॥
सो यह भूल सुधारो भूल यही है मूल की ।

पद

प्रभूजी मेरी नौका लगादो पार ।
स्वार्थी देव करत सेवक हित, सेवा सम उपकार ।
यातैं पार परत नहिं जानूं, यहै वाणिक व्यवहार ॥ १ ॥
जप व्रत नियम धर्म नहिंजानूं, मैं मतिमंद गँवार ।
इतने पाप किये मैं अगणित, गिनतन पावै पार ॥ २ ॥
जीर्ण शीर्ण यह नाव पुरानी, हैं जामैं नवद्वार ।
काम क्रोध लोभादि पापके, अतुलित भरे पहार ॥ ३ ॥
नाम पतित पावन प्रभु तुमरो, मैं पतितन सरदार ।
केवल एक आश प्रभुपदकी, करहु शीघ्र उद्धार ॥ ४ ॥
सब दिन फिरत बैल तेली को, नहिं निकरत घर द्वार ।
भ्रमत रह्यो त्यों लख चौरासी, निकरन को नहिं वार ॥ ५ ॥

सुत धन धाम राजगृह मंदिर, तिय बान्धव परिवार ।
जे सुखके साधन मैं जाने, ते सब दुख आगार ॥ ६ ॥
जैसें काग जहाज न जानत, नौका विना उवार ।
त्यौं निराश ह्वै सब उपायतें, ताकेउ शरण तुम्हार ॥ ७ ॥
भवसागर में नाव परी है, घूमि रही मधि धार ।
रामचन्द्र ज्यौं गजहिं उबारयो, अब क्यौं करत अँवार ॥ ८ ॥
प्रभूजी मेरी नौका लगादो पार ।

देखहुं रामशरण सुखदाता ।
कटि तूणिर चाप शर धरि कर, सिय समेत दोउ भ्रात ।
जटाजूट शिर माल गले में, अखिल जगत के त्राता ॥ १ ॥
श्यामल अंग सरोरुह लोचन, मृदुल मनोहर गाता ।
चन्द्रवदन विलोकि जिहिं शोभा, कोटिं मनोज लजाता ॥ २ ॥
प्रात नाम जिन लेन अमंगल, सकललोक जिहिं गाता ।
केवल रामशरण महिमाते, भे प्रसिद्ध विख्याता ॥ ३ ॥
ऋच्छ भालु कपि खग शबरी ए, नहिंजप तप मख ज्ञाता ।
मुनि दुर्लभ सो गति तिन पाई, रामचरण के नाता ॥ ४ ॥
योग यज्ञ जप पन व्रत धारे, जो फल दृष्टि न आता ।
रामशरणतैं जन्म सफल ह्वै, अंत परमपद पाता ॥ ५ ॥
ध्यान मांहि विधिहर मुनिजनके, जो कवहुंकि है आता ।
स्थापन धर्म काज सुरसाधन, मनुज देह धरि धाता ॥ ६ ॥
सजल नयन मुख वचन आवत; निरख राम कह गाता ।
सुधासिंधु ज्यौं मिलत तृषित हित, हर्षन हृदय समाता ॥ ७ ॥

दृग मगतें उर मन्दिर आयेउ, पलक कपाट लगाता ।
जिह्वा श्रोत्र रोकिखिरकी तव, निकरन मग नहिं पाता ॥ ८ ॥
जेहिं महिमा विधि हर नहिं पावत, निगम नेति कह गाता ।
रामचन्द्र पदपंकज उरधरि, मौन भये सुख आता ॥ ९ ॥

पद

जो तू राम राम चित लाता तेरा जन्म सफल व्है जाता ।
सुत धनधाम दार परिवारहिं, सुखद लखे तुम ताता ।
इनहिं छाडि तू जाय अकेला, अन्त होंय दुखदाता ॥ १ ॥
सुधासिन्धु तजि रामनाम तू, विषय हलाहल खाता ।
मरु मरीच सम दृश्य जगत यह, पलकहि मांहि विलाता ॥ २ ॥
आधि व्याधि संताप दुःख सब, कबहु निकट नहिं आता ।
यमकी त्रास दूर ह्वै त्वरितहिं, संसृति जाल नशाता ॥ ३ ॥
रामनाम महिमा अति पावन, जिंहि शिव ध्यान लगाता ।
मंत्र राम तारक सब मृतकन, काशी मांहि सुनाता ॥ ४ ॥
ता प्रभावतें जन्म अमित कें, पाप पहार गमाता ।
शुद्ध देह धरिदेव यानतें, ब्रह्मलोक हित धाता ॥ ५ ॥
अन्त समय जन येक बारहू, रामनाम को ध्याता ।
कोटि जन्म के पाप नाशकर, अमर लोक वसि जात ॥ ६ ॥
शव आगे जन चलहिं बहुत से, राम नाम सत गाता ।
जीवतही जन ध्यान करे तौ, जन्म मरण छुटिजाता ॥ ७ ॥
भवसागर तारन तरणी यह, राम नाम विख्यात ।
रामचन्द्र सो सुलभ प्राप्त है, मूढ छांडि पछुताता ॥ ८ ॥

लखे मैं राम गरीबनवाज ।
रिपुको बन्धु विभीषण निश्चर, शरण लही तजि लाज ।
भुजा पसारि मिले प्रभू सादर, दीन लंकको राज ॥ १ ॥
कपि सुकंठ निर्वासित दुःखित, करि न सकै कछु काज ।
बालि मारि कपिराज कियो जिहिं, अंगद हित युवराज ॥ २ ॥
दंडक बनके ऋषि मुनिगण की, दुःखित सकल समाज ।
सुर मुनि जनके काज सँवारन, सकल सजायो साज ॥ ३ ॥
याहूतैं जग जानि परत हैं, राम गरीब नवाज ।
सुलभ किये ते जन प्रतिपालक, जलवायू तृण नाज ॥ ४ ॥
मुनि पत्नी तारन हित धाये, मुनि मख रक्षा काज ।
धर्म हेतु सुरमुनि हित त्यागे, मात तात गृह राज ॥ ५ ॥
ममसन दीनन और जगत मैं, तुम सम दीन नवाज ।
सार्थक करो नाम प्रभु अपनो, राखि दीनकी लाज ॥ ६ ॥
रामचन्द्र अस दीनबन्धु तजि, जे चाहहिं सुखसाज ।
ते दुर्भागी नीच आपद, अपनों करहिं अकाज ॥ ७ ॥

पद

हमरे सबहिं रामसन नाता ।
कुल बान्धव परिवार मात पितु, रामहिं सुत अरु भ्राता ।
सुहृद इष्ट गुरु नित प्रति पालक, सखा मित्र लघु जाता ॥ १ ॥
जो रिपु परम दशासन निश्चर, घातक युद्ध उपाता ।
वैर भाव तजि ताहि दयानिधि, अपने धाम पठाता ॥ २ ॥
कौशिक मुनि के संग भ्रात दोउ, मख रक्षा हित जाता ।
मुनि तिय तारि सुबाहु मारि किय, सुयश जगत विख्याता ॥ ३ ॥

नाते नेह जगत के जेते, स्वार्थ मात्र दरसाता ।
विन स्वारथ आकाश कुसुम सम, ढूंढे दृष्टि न आता ॥ ४ ॥
विन स्वारथ ह्वै कष्ट सहायक, अस रघुनाथहि पाता ।
अपराधी जयंत पद परतहि, क्षमा कीन जग त्राता ॥ ५ ॥
रामचन्द्र अस जानि विवेकी, करहिं रामसन नाता ।
जन्म सफल जीवन अति उत्तम, भव बन्धन कटि जाता ॥ ६ ॥

अरे मन प्रभुपद प्रीति लगाय, जातैं जन्म मरण छुटिजाय ।
नाते नेह जगत के झूठे, इन मैं चित्त न भ्रमाय ।
ज्यों स्वप्ने की सुख समृद्धि धन, जगे दृष्टि नहिं आय ॥ १ ॥
इन्द्र धनुप सम जग विचित्रता, चित मोहक दरसाय ।
निकट गये पर कछु नहिं भासत, दुःख रूप ह्वै जाय ॥ २ ॥
तू सुख आश करत जिन जिनतैं ते दुख मूल जनाँय ।
ज्यौं जन क्षुधित तृप्तिहित मनतैं, जानि हलाहल खाय ॥ ३ ॥
आधि व्याधि सताप दुःख सब, जातैं त्वरित नसांय ।
सर्वोत्तम सुख शान्ति मिलै अरु, विघ्न सकल मिट जांय ॥ ४ ॥
द्रौपदि चीरहरण दुःशासन, कही सभा मैं गाय ।
ह्वै अवाक मुख ताकत पांडव, कछु नहिं चली बसाय ॥ ५ ॥
दुखित द्रौपदी कीन प्रार्थना, यदुपति पहुँचे आय ।
खींचत चीर थके दुःशासन, चीर अन्त नहिं आय ॥ ६ ॥
ह्वै मदान्ध गज ग्राह लेट जल; जब गज रह्यो थकाय ।
आरत गिरा सुनत हरि धाये, त्वरित ही कीन सहाय ॥ ७ ॥
रामचन्द्र अस दीनवन्धु तजि, सुख हित करहिं उपाय ।
ते मतिमन्द परम दुर्भागी, सुख कबहूँ नहिं पाँय ॥ ८ ॥

पद ।

ईश्वर के प्रति

हे जगदीश कृपालु दयामय, नम्र निवेदन श्रवण करो ।
घोर दुखी हैं सभी विप्र जन, निज भक्तों की व्यथा हरो ॥ १ ॥
विनय विनीत एक यह हमरी, श्रेष्ठ बुद्धि सबही को दो ।
ईर्षा द्वेष अरु मत अनैक्य की, दुष्ट बुद्धि को प्रभु हरलो ॥ २ ॥
चहँ कल्याण सबहिका सबही बुरा न चिन्तन कबहुं करैं ।
प्राणी मात्रका दुःख देखकर, यत्न सबहि जन चित्तधरैं ॥ ३ ॥
भ्रातृभाव पूरित हो जगमें, प्रेमरज्जु बँधजाय सभी ।
आश्रय दया सत्य है निश्चल, सुख पावहिं जन विपुल तभी ॥ ४ ॥
दंडक वनके ऋषि समाज को, बहु प्रकार जब दुःख दियो ।
निश्चर वृन्द दुष्ट बहु मिलितव, विविधि आनि पद दलित कियो ॥५॥
धारण कर अवतार त्वरितही, निश्चर कुलको अन्त कियो ।
सुर मुनिजनकी रक्षाकर प्रभु, अभयदान उन सबहिं दियो ॥ ६ ॥
उनहिं मुनिन की हम सन्तति हैं, जिन-पीरा प्रभु पूर्व हरी ।
तुमहू वही दीन दुखहारी, हे प्रभु अब क्यों देर करी ॥ ७ ॥
पूर्व कृपाकी स्मृती करावन, विजया माता आई है ।
लखि वत्सल्य भाव जननीको, जय जय ध्वनि नभ छाई है ॥ ८ ॥
रामचन्द्र तुमरे पदपंकज, पावन भारत भूमि भई ।
शीघ्र सँभले निज शक्ती को, दृष्टि प्रसारो दयामई ॥ ९ ॥

अनुभव प्रदीपिका का अशुद्ध शुद्ध का सूची पत्र ।

आत्म निवेदन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	३	संसार और सृष्टि	संसार की सृष्टि
	३	की इस	को और
	३	भारत व	भारत वर्ष
	११	उच्चा जाति	उच्च जाति
३	७	यथाथ	यथार्थ

अनुभव प्रदीपिका ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	खावति	खावहिं
	५	वतावे	बनावै
२	२४	जानेहूं	जानहूं
३	६	आय	आत
३	१०	जातैं	तातैं
	६	सब दुःख	दुख
५	६	टीवे टीव	टेवे टीप
५	६	दिषावत	दिखावत
	१२	दुःख मय	दुख मय
६	५	है आवगो	जावैगी
	७	वहु दुःख	वहु दुख
	१२	चितन	चिन्तन
	१६	दुःख पाये	दुख पाये
७	२	वुमति	कुमति
	५	दुःख पावत	दुख पावत
	११	शक्षा	शिक्षा
८	१५	ताकू	ताकूं
	२०	कमावत	कमावन
९	४	कवह	कवहू
	८	गध नहिं	गंध नहीं
	१२	पसो	परयो
१०	८	फर	फरै
	१८	आचाय	आचार्य
११	३	जनि	जन
	१५	जव गायो	जन गायो
१२	१	प्रत रूप	प्रेत रूप
	६	राहि लखि	ताहि लखि
१३	११	सव कोय	सब होय
	१६	अस नरक	अरु नरक
१४	१७	दुःख पांहि	दुख पाहिं
१५	२	रहौ दुःख माहि	दुख मांहि
	६	प्रारव्ध भटि	प्रारब्ध भट
१६	४	वचवों भयो	बचवो भलो
	२०	निर कीजिये	नित कीजिये
	२०	सा है	सो है
	२४	रहै हितकर	रहै तातैं हितकर
१७	१२	गंगा माई	गंगा गाई
१८	५	डर नाहि	डरैं नाहिं
१९	४	निशि दिन खेय	खेह
१९	१५	तौहुन सुख	तौ हू सुख
२२	३	जनाव	जनावे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३	३	विकल श्रम व्यय	विफल व्यय श्रम श्ररु
	१५	किये ला	किये सो
	१८	सुख भोग	सुखदुख भोग
२४	११	जै न्योछावर	जे न्योछावर
२५	१०	दुःख याँ	दुख याँ
	२१	मैं दाप	मैं दोष
२६	१	सत कूं	सन्त कूं
	११	है न दोष	दैं न दोप
	१६	अव जीवेत	अव जीवेतैं
२८	५	झूठो सारे	झूंठे सारे
	१०	आश्रम को पाशि	आश्रम की
	२२	दार आर्य	दार आय
६	४	विन पर सारी	विन सारी
३०	४	अव अभ्यन्तर	जव अभ्यन्तर
३१	४	युधिष्टिर	युधिष्ठिरा
	२०	शठ जैं	शठ ज्यौं
	२३	मदाना	मदीना
	२४	न मिलै	ना मिलै
	१०	आपू आय	आपूं आप
	१६	सो ह न	सोहू न
	१६	नीच है	नीच हु
	२१	के रामचन्द्र	के अस रामचन्द्र
	२१	सुजान है	सुजान है
३३	७	दैन नहीं	देन हीं
३४	१२	नर नामको नाम	नर नाम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१३	चोर हैं	चोर ये हैं
	१८	तौ न	तौ हू न
	१६	कचहु रह	कचहू रह
	२०	दुख होय	दुख हाय
३५	८	पसो मशक	परयो मशक
	११	विजली कर	विजली कूं कर
	१६	आतम सुजात	आतम सजात
३६	१८	नित्य सत्य	नित सत्य
	२४	अनत अन	अनन्त अज
३७	१	तेरे दूर	नेरे दूर
	८	मत्त गेज	मत्त गज
३८	५	विचित्र गत	विचित्र जग
	१४	वोलत माहि	वोलत जगत माहिं
३९	६	लरत जरत	लरत झगरत
	११	जन मल्ल	जय यत्न
४०	५	ममता तेरी	ममता वेरी
	६	काटै जो	काटै जोय
४१	६	पलक ठौरि	पलक ठैरि
	१७	धाम वोप	धाम कोष
४२	४	वहुत लखे विरले	वहुत विरल
४३	१६	काको होय	काको कोय
४४	१२	धर्म उदर भर	उदर भर
	१६	है नित	है तिन
४५	६	संग आशक्त	सँग आशक
	१६	जानते विषादि	जानतें विमादि

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	धर्म कूं विसारत	धर्म कूं विसरात
५	जगत जानत	जगत जनात
६	नाम कहावत	नाम कहात
६	कछुक लोग	कछुक लोभ
१७	यह श्रुति	यह श्रुती
६	जन मित्र द्रोही	मित्र द्रोही
१२	दत्तापहारी तो	दत्तापहारी ता
१३	लखि स्वान अरु	स्वान अरु
१३	दोऊ नाम	द्वौ नाम
१५	यह स्पष्टि क्रम	यह सृष्टि क्रम
१६	नहिं संग कोई	नहिं संग
२३	युधिष्ठिर राय	युधिष्ठिर राम
१५	कर्म विहिन	कर्म विहीन
१	संस्कार	संसकार
१	जिन के मन्द	जिन मन्द
१२	हरण को	हरण करि
१२	पहुंचावत मम	पहुंचावत धम
१	दोऊ नाम	द्वौ काम
८	अद्वैत हु रूप	अद्वैत रूप
१२	भाडै मांग	भाडै भांग
६	चित आई	चित आई
१०	वहु भांति दुःख	वहु भांति दुख
१७	हूं अरु निराधार	हूं निराधार
११	नही अरु धर्मादिक	नहीं धर्मादिक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२०	अगम अनङ्ग	अगाम अनङ्ग
५३	६	विषय विच	विषय बिष
	८	परिवार जन	परिवार नानि
	१३	यह वन्दन	यह बन्धन
	१६	सो है दुःख	सो ह दुख
५४	२	जे यह क्षणिक	यह क्षणिक
	५	सारे दुःख	सारे दुख
	७	अति दुःख	अति दुख पावै
५५	१	पाशिपिलावै	पाशिविलावैं
	१०	तिय नेह	तिय तैं नेहं
	१३	शिलोदर में	शिश्नोदर मैं
	१६	यह सारे वेद	यह सार वेद
५६	१५	जैसे मोती धरो	मोती धर्यो
५७	१६	कुटम्ब दुःखदायी	दुखदाई
	२०	परमात्म कहाँ है	परमात्म कहां
५८	३	रूप सुहाया	सुहायो
	४	कानिरतिपै	कानिरीतिपै
	६	स्वर्ग नर्क	स्वर्ग नर्क
	६	कीसा श्रुति	सो श्रुति
५६	१३	है आधार	है आधार
	१५	पंच भूता	पंच भूत
६०	१६	रक्षिन	रक्षक
	१६	अव आशक्ती	आशक्ती
	१६	भ्रम वाला	भ्रम त्रासा
६१	१५	सिदमोदर मैं	शिनोदर मैं
	१५	लजसी	लजासी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१४	जानि मुक्ति	जानि मुक्त		१८	आपहि नहि	आपहिं
	२०	लखे वह	लखे यहु	७२	७	है मैं ही जोई	हैं नहिं
६३	१	तल उपरि	तल ऊपरि		६	चित आवे	चित
	२	गृह श्रुती	गृह श्रुति		१०	है मैं यही	मैं का
	३	लह विचार	लहि विचार		१४	चर्म लये	चर्म लां
	३	घर खोजन	घर खोजन		२०	यह दुःख का	यह दु
६४	२	अप्रतर्क्य से	अप्रतर्क्य में	७३	१४	यहै याथिक	यहै य
	६	मैं तो नित्य	मैं तो नित		६	यह ना ।	यहै न
	१८	गल आशक्ति	गलआसक्ति	७४	६	गर्जाई उवायौ	उवा
६५	२	ताही त	ताही तें		६	कटि तुणिर	कटि
	१४	अज अविनाशी	अविनाशी		६	सिव समेत	सिद्ध
	१५	बसि जावा	बसि जावो		६	दोउ भ्रात	द्वौ भ्र
६६	१३	विरमायो	विरमायो		१५	शबरी रा	शबरी
		नाथ	मेरे नाथ		१७	जय पन	जय त
	१५	स्वाश्रम	स्वाश्रय		२१	वचन आवत	वचन न
	१६	सो परमात्मा	सो परमात्म	७५	५	तू राम राम	तू राम
६७	६	माता पिता	मात पिता		१७	बसि जात	बसि जात
	१३	भटकती तेरे हि	मेरे हि		२०	नाम विख्यात	नाम विख
६८	५	करहु तुव	करहु तुम	७६	१०	रक्षा वाज	रक्षा क्या
	६	ज्यौं दुःख	ज्यौं दुख		१५	नीच आपह	नीच आ
	१४	आपहि वठ	आपहि कंठ		१३	पितु राही	पितु राम
६९	१	निज भुमको	निज भुजको	७७	१३	जन सुधत	जन सुधि
	६	समता तेरे	समता मेरे		१४	व्याधि सताप	व्याधि संता
७१	६	श्रुति	श्रुति सत		१८	पहुंचे आय	पहुंचे आ
		अविनाशी	अविनाशी		२०	गज ग्राह	गज ग्राह
	८	नाहि वचार	नाहिविचारैं			लेत	लखे